ISSN : 2583-9411 (Online)
www.shubhodaya.co.in

शुभोदय

शरद अंक 2024

Volume : 03
ISSUE : 02

प्रस्तुति
'शुभम्' साहित्य कला एवं संस्कृति संस्थान (पंजी.) गुलावठी (बुलंदशहर) उ. प्र. भारत

शुभोदय

साहित्यिक ई-पत्रिका
ईमेल: shubhodayashubham@gmail.com
वेबपेज : www.shubhodaya.co.in

शरद अंक - 2024

ISSN: 2583-9411(Online)
Volume:03 * Issue: 02

संरक्षक मंडल
डॉ. कमल किशोर गोयनका
पूर्व उपाध्यक्ष, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान,
भारत सरकार

प्रोफेसर महावीर सरन जैन
पूर्व निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान,
भारत सरकार

प्रधान संपादक
डॉ. देवकीनंदन शर्मा
मोबाइल - 9837573250

संपादक
डॉ. ईश्वर सिंह
मोबाइल - 9899137354

सह संपादक
मुकेश निर्विकार
संदीप कुमार सिंह
डॉ. नीलम गर्ग
डॉ. ब्रजराज यादव
डॉ. राजकुमार वर्मा (तकनीकी)

प्रस्तुति
'शुभम्'
साहित्य, कला एवं संस्कृति संस्थान (पंजीकृत)
गुलावठी (बुलन्दशहर), उत्तर प्रदेश, भारत

डिज़ाइन
त्रिगुण कुमार झा
मो. : 9810679648

'शुभोदय' में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार रचनाकारों के हैं, उनसे 'संपादक मंडल' की सहमति होना अनिवार्य नहीं

‘शुभोदय’ (शरद 2024) अनुक्रमणिका

सरस्वती वंदना 3

प्रधान संपादक की कलम से 6
संपादक की कलम से 7
साक्षात्कार 8

लेख

डॉ. अंजू दुआ जैमिनी 12
डॉ. भावना कुँवर 13
प्रशांत शर्मा 15
सुरेशचंद शर्मा 16
गीता रस्तोगी ‘गीतांजलि’ 18
डॉ. देवकीनंदन शर्मा 20

कविता/गीत/ग़ज़ल

अरविंद विदेह 21
डॉ. रामयज्ञ मौर्य 22
डॉ. ममता शर्मा 23
मंजू सिंह 24
डॉ. रामगोपाल भारतीय 25
अरुण शकुन सहिबाबादी 26
पूनम माटिया 27
व्यग्र पांडेय 28

संस्मरण /व्यंग्य लेख

मधु वार्ष्णेय 29
प्रगीत कुंअर 32
आशा शैली 35
सुधा गोयल 37
बी एल आच्छा 38

कहानी/लघु कथाएँ

सुभाष चंदर 40
पूनम सुभाष 45
विपिन जैन 47

पुस्तक समीक्षा

डॉ. रेखा चौधरी 48
डॉ. पूजा हेमकुमार 50
डॉ. अंजू दुबे 52
बी के वर्मा ‘शैदी’ 55
डॉ. मोनू सिंह 56
मुकेश निर्विकार 57

साहित्यिक हलचल 59
विरासत 60
नियम 62

शुभोदय

वर दे...

वर दे, वीणावादिनि वर दे,
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव
भारत में भर दे !

काट अंध-उर के बंधन-स्तर,
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर,
कलुष-भेद-तम हर प्रकाश भर,
जगमग जग कर दे,
वर दे, वीणावादिनि वर दे,
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव
भारत में भर दे !

नव गति, नव लय, ताल-छंद नव
नवल कंठ, नव जलद-मन्द्ररव,
नव नभ के नव विहग-वृंद को,
नव पर, नव स्वर दे,
वर दे, वीणावादिनि वर दे,
वर दे, वीणावादिनि वर दे,
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव
भारत में भर दे !

– सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

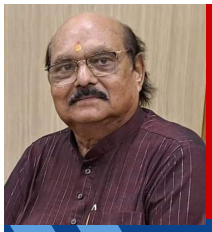

प्रधान संपादक की कलम से

जागें नवयुग के खग...

युद्धों की विभीषिका से भयाक्रांत विश्व, जीवन मूल्यों की गिरावट से त्रस्त जीवन और अपनत्व की मधुरता से रिक्त समाज एक मार्ग की तलाश में भटक रहे हैं, जहाँ शाँति, सद्भाव और प्रेम हो। जाएँ तो जाएँ कहाँ? तकनीकी द्रुत गति ने लाइफ को फास्ट तो बना दिया लेकिन संजीदगी को समाप्त कर दिया है। धन लिप्सा और यश कामना ने अनैतिक आचरण पथ की ओर अग्रसर कर दिया है। शिक्षा, स्वास्थ्य और सुरक्षा, जो किसी भी राष्ट्र के आधारभूत घटक हैं, राजनीतिक शिकंजे में जकड़े हुए हैं। धर्म, संस्कृति, आध्यात्म, साहित्य और विज्ञान की सेहत भी खास दुरुस्त नहीं है। अंधकार में आशा की कोई किरण नजर आती है, तो वह है, कलम। हालाँकि खतरे यहाँ भी कम नहीं हैं लेकिन फिर भी एक उम्मीद बंधती है। कबीर, तुलसी, भूषण, प्रसाद, निराला, प्रेमचंद और नागार्जुन की विरासत आश्वस्त करती है। 'शुभोदय' इसी आश्वस्ति का परचम है, जिसने जीवन यात्रा के छोटे से काल खंड में अपनी वैचारिक अर्थवत्ता और सृजनात्मक जिजीविषा के द्वारा स्वयं को साहित्य और संस्कृति की दुनिया से जोड़ा है।

'शुभोदय' एक साहित्यिक ई-पत्रिका मात्र नहीं है, यह एक पावन सारस्वत अनुष्ठान है; इसमें सहभागी बनने वाले सभी सुधी लेखकों और जिज्ञासु पाठकों का कोटिश: अभिनंदन है ... वंदन है...

आइए, 'शुभोदय' के नवांक (शरद 2024) का स्वागत महाकवि सुमित्रानंदन पंत के इस आह्वान के साथ करते हैं:

"गर्जन कर मानव केशरि!
प्राणपद गर्जन,
जागें नवयुग के खग
बरसा जीवन-कूजन।"

श्रीमत्कुंज विहारणे नम:

विजयदशमी
12 अक्टूबर 2024

डॉ. देवकीनंदन शर्मा
प्रधान संपादक

संपादक की कलम से

साहित्य, आत्मिक विरेचन का सशक्त माध्यम है...

जब 'शुभोदय' का यह शरद अंक (2024) आपके हाथों में या आपकी स्क्रीन पर होगा तब वैश्विक परिदृश्य कई विसंगतियों का साक्षी बन रहा है। एक साथ बहुत से संघर्ष और टकराव तो नई स्थितियों को जन्म दे ही रहे हैं किंतु इन भौगोलिक और राजनीतिक संघर्षों के बीच अंतत: मानवीयता लहूलुहान हो रही है। रूस-यूक्रेन और इजरायल-फिलीस्तीन संघर्ष अभी खत्म होते नहीं दिख रहा है और इजरायल-लेबनान और इजरायल-ईरान युद्ध की आशंकाओं के बादल शाँति और सहअस्तित्व के सूर्य को ढकने का प्रयास कर रहे हैं।

इन सारे मतभेद और मनभेदों के बीच यदि मानवता को बचाने का कोई रास्ता है तो वह रास्ता साहित्य की गलियों से गुजरता है। साहित्य की कक्षा में बैठकर ही हम शाँति, सद्भाव, सहयोग, सम्मान और सह-अस्तित्व का पाठ पढ़ सकते हैं। भौतिकवाद, भोगवाद, आतंकवाद और विस्तारवाद जैसी समस्याओं का निराकरण साहित्य के ही पास मिल सकता है क्योंकि साहित्य व्यक्ति के आत्मिक विरेचन का सबसे सशक्त माध्यम है।

शुभोदय का शरद अंक (2024) कुछ बदलावों के साथ प्रस्तुत है। इस अंक में भी आपको विशुद्ध साहित्यिक रचनाओं का रसास्वादन करने को मिलेगा। प्रतिष्ठित साहित्यकार श्री ब्रज किशोर वर्मा 'शैदी' का साक्षात्कार और कई साहित्यिक पुस्तकों की समीक्षा आपके आकर्षण का केंद्र बनेंगी। सुधी पाठकों के अभिमत हमारा उत्साहवर्धन करने के साथ-साथ मार्गदर्शन भी करेंगे, अत: आपकी बहुमूल्य पाठकीय प्रतिक्रिया की हमें प्रतीक्षा रहेगी।

सादर,

10 अक्टूबर 2024

डॉ. ईश्वर सिंह

संपादक

साक्षात्कार

'गांभीर्य, लेखन की आत्मा है ..

-बी. के. वर्मा 'शैदी '

डॉ. ईश्वर सिंह : शैदी साहब, आपने देश विदेश में हिंदी साहित्य के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अपनी इस साहित्यिक यात्रा के बारे में संक्षेप में हमें बताइए।

बी के वर्मा: मैंने कविता का कखहरा कक्षा 10 में सीखना प्रारंभ कर दिया था। मुझे गोपालदास नीरज और बच्चन साहब का सान्निध्य किशोरावस्था में प्राप्त हो गया था। मुझे इन महान कवियों के साथ कवि सम्मेलनों में मंच साझा करने का सौभाग्य प्राप्त है। मैंने देश-विदेश में हिंदी के प्रचार -प्रसार का कार्य किया है। विशेष रूप से तत्कालीन यूगोस्लाविया के क्रोएशिया में हिंदी और भारतीय संस्कृति पर बहुत काम किया है और आज भी मैं क्रोएशियन भाषा को जानने वाला भारत में एकमात्र व्यक्ति हूँ। मैं हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी और ब्रजभाषा में लिखता हूँ। कविता, ग़ज़ल, दोहा, गीत आदि विधाओं में लिखता हूँ। मेरे अब तक 26 ग्रंथ

प्रकाशित हो चुके हैं और 5 प्रकाशनाधीन हैं।

डॉ० सिंह : आपने बच्चन जी की मधुशाला की तर्ज पर 'मयखाना' पुस्तक लिखी थी। हमें उसके बारे में बताइए।

बी के वर्मा : ये लगभग 70 साल पुरानी बात है। बच्चन साहब जिस भी कवि सम्मेलन में जाते थे, लोग उनसे मधुशाला सुनाने की फरमाइश करते थे। मैंने जब मधुशाला पढ़ी तो मुझे लगा कि यह उर्दू का विषय है और मैंने उसी छंद में 120 रूबाइयां लिखीं। ये रूबाइयां मधुशाला का अनुवाद नहीं थीं बल्कि उसी विषयवस्तु पर मौलिक रचना थीं। मैंने इस पुस्तक का नाम 'मयखाना' रखा और इसे लोगों का बेहद प्यार मिला और विभिन्न कवि सम्मेलनों और मुशायरों में इसे खूब सुना और सराहा गया।

डॉ० सिंह : आपको साहित्य से जुड़े लगभग 70 वर्ष हो चुके हैं। आप अपने समकालीन साहित्य में आज क्या परिवर्तन देखते हैं और उसकी गुणवत्ता को किस प्रकार देखते हैं?

बी के वर्मा : साहित्य समाज का दर्पण होता है। हमारा परिवेश ही साहित्य में प्रतिबिंबित होता है। आपका लेखन चाहे गद्य है या पद्य है उसमें अपने समय की झलक देखने को मिलती है। लेकिन एक परिवर्तन जो मैं देख रहा हूँ, वह यह है कि लेखन में जो एक गांभीर्य होना चाहिए उसका अभाव दिखता है। उसमें विषय विविधता तो बहुत आ गई है, सामाजिकता भी उसके अंदर समाहित हो गई है लेकिन जिसको आप आत्मा कहते हैं वह लेखन की गंभीरता है उस पर वर्तमान परिवेश की रेडीमेड और फास्ट फूड संस्कृति का

स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। इसलिए लेखन के पीछे जो अध्ययन होना चाहिए उसकी कमी खटकने वाली है। फटाफट कुछ लिखने और उसे सोशल मीडिया पर पोस्ट करने की हड़बड़ी गुणवत्ता को विपरीत रूप से प्रभावित कर रही है। यह प्रवृत्ति युवा रचनाकारों में तो है ही, आंशिक रूप से पुराने रचनाकारों को भी प्रभावित कर रही है। सोशल मीडिया पर मिलने वाली मिथ्या प्रशंसा प्रतिभाओं को कुंद बना रही है और रचनाकारों में सुधार या बेहतरी की संभावनाओं को समाप्त कर रही है।

डॉ० सिंह: आज इंटरनेट का युग है। इस युग में आप पुस्तकों को कितना प्रासंगिक पाते हैं और पुस्तकों के पाठकों की घटती संख्या में इंटरनेट की भूमिका पर आपका क्या अभिमत हैं?

बी के वर्मा : इंटरनेट से पुस्तकों की उपलब्धता बढ़ गई है। अब हार्ड कॉपी की जरूरत नहीं है। कितनी ही पुस्तकें आपके मोबाइल में आ सकती हैं। इंटरनेट की मदद से आप अपनी पुस्तक सुदूर बैठे किसी भी पाठक को किसी भी समय भेज सकते हैं या किसी से मंगा सकते हैं। इस रूप में इंटरनेट हमारा मददगार है। किंतु जब पाठक पुस्तक को न पढ़कर केवल जरूरी सूचना भर गूगल से सर्च कर लेता है तब वह अधूरे ज्ञान के खतरों में पड़ जाता है। ऐसे पाठक के पास सूचना तो होती है, ज्ञान नहीं होता। इसकी वजह यह है कि पुस्तक पढ़ने का किसी के पास समय नहीं है अधिकतर समय लोग सोशल मीडिया को देखने में बर्बाद कर देते हैं। इंटरनेट पुस्तकों के अध्ययन और उपलब्धता में अत्यंत सहायक सिद्ध हो सकता है, यह हम पर निर्भर करता है कि हम उसका उपयोग किस प्रकार करते हैं।

डॉ० सिंह : इंटरनेट से एक कदम आगे जाकर, हम कृत्रिम मेधा (आर्टिफीशियल इंटेलीजेंस) के युग में आ गए हैं, जिसकी मदद से बहुत सी रचनाएं लिखी जा सकती हैं। मौलिक साहित्य सृजन पर इसके प्रभाव पर आप क्या कहना चाहेंगे?

बी के वर्मा : यह तो अभी एआई का प्रारंभिक रूप है। यह किस प्रकार मानव जीवन को प्रभावित करने वाला है, वह अभी भविष्य के गर्भ में छिपा हुआ है। अगर सब कुछ मशीन के माध्यम से हो गया तो हमारी सोचने की शक्ति और रचनात्मकता का क्या होगा? वह तो समाप्त हो जाएगी। कोई रचना कितनी अच्छी है, उसके अंदर कितनी मौलिकता है यह यह सब कुछ इस बात पर निर्भर करेगा कि एआई जनित रचनाओं की स्वीकृति कितनी रहेगी। एआई से हमारा चिंतन इतना ज्यादा प्रभावित हो जाएगा कि हमारी अपनी रचनाधर्मिता और मौलिकता सब खत्म हो जाएगी और हम उसी पर निर्भर करने लगेंगे। फिर हम एआइ की सूचना को ही अंतिम सत्य मानने लगेंगे। यह स्थिति साहित्य, समाज या मानव जीवन के लिए खतरनाक होगी।

डॉ० सिंह : साहित्य जगत में कवियों की बढ़ती संख्या और उसी अनुपात में छपती पुस्तकों को साहित्यिक गुणवत्ता के आधार पर आप कैसे आंकते हैं ?

बी के वर्मा : लिखना प्रारंभ करते ही पुस्तक प्रकाशन की ललक गुणवत्ता को प्रभावित करती है। नए लेखकों को अनुभवी साहित्यकारों की पुस्तकें पढ़नी चाहिएं, उनका मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहिए और उसके बाद पुस्तक प्रकाशन की बात सोचनी चाहिए। शॉर्टकट का रास्ता गुणवत्ता वाला नहीं होता, साहित्य में तो बिल्कुल नहीं। आपकी पुस्तक देर से आए लेकिन अच्छी बनकर आए। आपकी पुस्तक कम संख्या में आएं लेकिन गुणवत्ता युक्त आएं, यह जिम्मेदारी आपकी है, लेखक की है।

डॉ. सिंह: साहित्यिक कार्यक्रमों में दर्शकों की घटती संख्या एक चिंता का विषय है। इसे बढ़ाने के लिए आपके विचार से क्या कदम उठाए जाने चाहिएं।

बी के वर्मा : साहित्यिक कार्यक्रमों में लोग या तो व्यक्तिगत रूचि से जाते हैं या आयोजक के साथ अपने निजी संबंधों के कारण जाते हैं। इसका एक कारण तो यह है कि सभी कार्यक्रम किसी न किसी रूप में सोशल मीडिया पर उपलब्ध हो जाते हैं, दूसरे लोगों को अपनी पसंद के कार्यक्रम टीवी और इंटरनेट पर उपलब्ध हैं, अत: उन्हें कुछ हटकर और कुछ विशेष दिया जाना चाहिए, तभी दर्शक साहित्यिक कार्यक्रमों में पहुंचेंगे।

डॉ. सिंह: सोशल मीडिया की साहित्य के संवर्धन में क्या भूमिका हो सकती है?

बी के वर्मा : सोशल मीडिया प्रचार और प्रसार का बेहद सशक्त माध्यम है। इसके द्वारा सहित्यिक सूचना और रचनाओं को एक क्लिक से अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचाा जा सकता है। यहाँ तक कि आप किसी सुदूर बैठे व्यक्ति को किसी कार्यक्रम से जोड़ सकते हैं और उसकी उपिस्थिति का लाभ ले सकते हैं। अपनी पुस्तकों के प्रचार प्रसार, प्रकाशक या मुद्रक के पास बार-बार आने-जाने, उनमें किसी प्रकार के संशोधन करने, रचनाओं को किसी पत्र-पत्रिका आदि में भेजने आदि में सोशल मीडिया की मदद ले सकते हैं। यदि संदर्भ के लिए आपको किसी साहित्यकार से कोई पुस्तक या रचना चाहिए तो वह एक मिनट में आपको प्राप्त हो सकती है। इन सब बातों से साहित्य के संवर्धन में सहायता मिल सकती है।

डॉ. सिंह: भारतीय साहित्य की समावेशी प्रवृत्ति के आप प्रबल पक्षधर रहे हैं। वर्तमान साहित्य में इस प्रवृत्ति पर क्या कहना चाहेंगे?

बी के वर्मा : साहित्यकार मूलत: समावेशी प्रवृत्ति का ही होता है। जो लोग संपूर्ण समाज को समान दृष्टि से नहीं देखते, वे अच्छे साहित्यकार नहीं हो सकते। आज भी अपवादों को छोड़ दें तो साहित्य समावेशी जीवन दर्शन का ही पक्षधर है। मेरा यह भी मानना है कि साहित्यकार को स्वयं अपना उदाहरण प्रस्तुत कर समाज को समावेशी बनने

की राह दिखानी चाहिए।

डॉ. सिंह : भारत में कालजयी साहित्य की एक समृद्ध परम्परा रही है। वर्तमान साहित्य में रामचरितमानस, प्रियप्रवास, साकेत, कामायनी, गोदान जैसी कालजयी कृतियां दिखाई नहीं देती।कुछ कहना चाहेंगे आप?

बी के वर्मा :कालजयी रचना तभी बन पाती है जबकि उसके सृजन में लेखक का अध्ययन हो, समर्पण हो, अपने समय की समझ हो और उसकी अपनी प्रतिभा हो। जिस कृति में ये चारों चीजें समाहित हो जाएंगी उसके कालजयी बनने की संभावना बन जाएगी। यहाँ यह समझना आवश्यक है कि अध्ययन से आशय केवल पुस्तकों के अध्ययन से नहीं है अपितु अपने समय, अपने परिवेश और मानव जीवन का अध्ययन भी इसी में शामिल है, समर्पण इतना चाहिए कि वह कृति लेखक के जीवन का अंतिम लक्ष्य बन जाए, समय की समझ से आशय यह है कि वह परिवेश में मौजूद अच्छाई व बुराइयों को, सही व गलत को और समस्त विसंगितयों को देख सके, समझ सके और प्रतिभा ऐसी कि इन बातों को क्रमबद्ध एवं प्रभावशाली ढंग से अपनी रचना में प्रस्तुत कर

सके।

मेरी व्यक्तिगत राय यह है कि आज अधिकाँश रचनाकार यह सब नहीं कर पा रहे हैं। लोगों के पास इतना समय नहीं है, सब जल्दबाजी में हैं। पढ़ने से ज्यादा लिखने में रुचि रखते हैं, अभिव्यक्ति का आधार अधूरी जानकारी और सुनी सुनाई बातें हो गई हैं। ज्ञान पाने के लिए गहरे सागर में गोता लगाने का साहस भी नहीं और लोग इसकी जरूरत भी महसूस नहीं करते। इसीलिए आजकल कालजयी रचनाएं नहीं लिखी जा रहीं हैं।

डॉ० सिंह: 'शुभोदय' के पाठकों और नवांकुर साहित्यकारों को आप क्या संदेश देना चाहेंगे?

बी के वर्मा : शुभोदय जैसी पत्रिका जिस भावना के साथ प्रारंभ की गई है और जिस समर्पण के साथ उसका प्रकाशन चल रहा है उसके लिए आवश्यक है कि इसे प्रोत्साहित किया जाए। इसके लिए आवश्यक है शुभोदय के पाठक इसे अच्छी तरह पढ़ें और इसमें बेहतरी के लिए अपने सुझाव दें। आपकी प्रतिक्रियाएं और आपका लेखन इस पत्रिका को

दीर्घायु बनाएंगे।

नवांकुर साहित्यकारों के लिए मेरा यही संदेश है कि खूब लिखिए और किसी स्थापित साहित्यकार के पास बैठकर उस पर चर्चा कीजिए। तालियों और शाबासी की अपेक्षा मत कीजिए। आलोचनाओं का स्वागत कीजिए। उनसे घबराइए नहीं। अच्छे रचनाकारों की पुस्तकों का अध्ययन कीजिए और सोशल मीडिया की सराहना में मत बह जाइए। अपनी लिखी हुई कविता, कहानी, ग़ज़ल या संस्मरण आदि को रख दीजिए और कुछ दिन बाद पुन: पढें, देखिए आप स्वयं उसमें सुधार करेंगे। जिस गलती को एक बार जान लें उसे फिर कभी न दोहरायें।

मैं शुभोदय के सभी पाठकों और रचनाकारों के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ और इस बात के लिए शुभोदय के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ कि इस साक्षात्कार के माध्यम से उन्होंने मेरा अपने पाठकों से परिचय कराया।

डॉ. सिंह: शैदी साहब, आपने शुभोदय को अपना बहुमूल्य समय दिया और हमारे पाठकों और रचनाकारों को अपने ज्ञान से लाभान्वित कराया, इसके लिए मैं 'शुभोदय संपादक मंडल' की ओर से आपके प्रति हृदय से आभार ज्ञापित करता हूँ।

***

डा. अंजु दुआ जैमिनी
फरीदाबाद – हरियाणा

मैं के आइने में 'मैं'

लेख

किस दिशा में जाना है, कौन तय करेगा? कैसे जीना है, कौन तय करेगा? यह प्रश्न अक्सर मन में उछल-कूद मचाता है। युवाओं के पास इसका एक ही उत्तर है- 'मैं'। यह 'मैं' ही सारे फसाद की जड़ है। 'मैं' 'मैं' करते हुए अपने स्वार्थ के पीछे घूमते रहोगे क्या?

'मैं ताकतवर हूँ', 'मैं धनवान हूँ', 'मैं खूबसूरत हूँ', 'मैं सर्वश्रेष्ठ हूँ', ऐसे विचारों वाला व्यक्ति अहंकार-भावना से ग्रस्त होता है। अहंकार तो रावण का भी नहीं रहा। सब जानते हैं कि रावण कितना ज्ञानी था, कितना बड़ा शिवभक्त था, कितना शक्तिशाली था, कितना धनवान था, उसमें बस एक ही दुर्गुण था-उसका 'मैं'। जो व्यक्ति मिमियाते हैं, भीतर से वे उतनी खोखले होते हैं। तो मित्रो! जो भाई-बंधु अहंकार में डूबे रहते हैं, उन्हें समझ लेना चाहिए कि उनके अहंकार का पुतला जलने वाला है।

स्कूल-कालेज में विद्यार्थियों के दो गुट होते हैं-एक धनवान और दूसरे, सीमित संसाधनयुक्त। धनवान अपने अहंकार में डूबे रहते हैं। वे नहीं जानते कि आने वाला समय उनके लिए पीली आंधी ले कर आने वाला हो सकता है। वे नहीं जानते, वे गलत दिशा में मुड़े बेवजह जी रहे व्यक्ति होने वाले हैं। वे भोगों को ही जीवन मान बैठे हैं। दूसरी ओर, सीमित संसाधनयुक्त विद्यार्थी जो पढ़ाई को ले कर संजीदा होते हैं, वे आने वाले संघर्षो से लड़ने के लिए पूरी तरह तैयार हो जाते हैं।

ऐशो-आराम को जीवन मानने वाले पढ़ाई पर ध्यान नहीं देते। उन्हें पता ही नहीं, उनके जीवन का क्या उद्देश्य है। वे तो बस नशे-पत्ते करना, लोगों का इस्तेमाल करना, उन्हें परेशान करना ही जानते हैं और उसे जीना कहते हैं। भावनाओं से कोसों दूर किसी का दुख-दर्द नहीं समझते। मानवीय गुणों का उनमें सदा अभाव रहता है। वे सिर्फ अपने-आप को भौंडे साधनों से खुश रखना चाहते हैं। श्रेष्ठता के भाव से युक्त इस तरह के युवा स्वयं को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं जिन्हें समय जवाब देता है।

स्कूल-कालेज में 'कूल डूड' जो हमेशा पढ़ाई को ले कर संजीदा रहते हैं वे दुनियादारी से कोसों दूर रहते हैं पढ़ाई में तेज, व्यवहार में शांत 'पैम्पर्ड चाइल्ड' सुधरे हुए बच्चे घर से बाहर या तो बिगड़ जाते हैं या शोषण का शिकार होते हैं क्योंकि ये संतुलन करना नहीं जानते। संघर्ष से जीतना नहीं जानते। स्वयं को कमजोर मानते हैं और दब्बू प्रवृत्ति के हो जाते हैं। सहमे रहते हैं, नर्म स्वभाव के होते हैं, मित्र बनाते हैं पर व्यवहार-कुशल नहीं होते इसलिए भेड़ सरीखे होते हैं। बदमाश लड़के इनका मनमाना उपयोग करते हैं। लैंगिक दुराचारियों को सजा मिलनी चाहिए क्योंकि इनके कारण इनके शिकार का भविष्य खराब हो जाता है और वे कुंठित हो कर जीते हैं।

ऐसे कुंठित व्यक्ति हीन भावना से ग्रस्त हो जाते हैं और स्वयं को हारा हुआ मान कर परिस्थितियों के सामने सिर झुका देते हैं। जीवन-भर खुशी की तलाश में वे भेड़ की खाल में छिपे भेड़ियों की बात सच मान लेते हैं।

क्या उपाय है इन भेड़ियों से बचने का?

उपाय है मित्र! सर्वप्रथम भेड़ की खाल में छिपे भेड़िए को पहचानना होगा। वह दोस्त दोस्त नहीं होता जो आपको गलत दिशा की ओर धकेल देता है। उसे पहचानो। उनके पंजे से दूर होना है तो घरवालों को बताओ। घर से बाहर रहते हो तो घर लौट आओ।

मैं कई ऐसे युवक-युवतियों को जानती हूँ जिन्हें हॉस्टल में रह कर इतना तनाव झेलना पड़ा, इतना मानसिक-शारीरिक शोषण का शिकार होना पड़ा, इतना प्रेम के नाम पर छल सहना पड़ा कि वे घर नहीं लौटे और वहीं मौत को गले लगा लिया। क्या ऐसी कोई समस्या है जिसका हल नहीं होता? क्या ऐसा कोई घाव है जिसे वक्त ने न भरा हो? क्या माँ-बाप अपने बच्चों को मुसीबत से निकालने में असमर्थ रहते हैं? नहीं। समय की प्रतीक्षा और अभिभावकों पर विश्वास, यही कुंजी है तनाव के ताले की।

तो बंधु! किस दिशा में जाना है और कैसे जीना है यह निश्चित ही आप तय करोगे। मैं का अर्थ मददगार व्यक्ति होना चाहिए जो अपने जीवन से दूसरे 'मैं' को निकाल फेंके।

***

भावना कुंअर
सिडनी आस्ट्रेलिया

उफ्फ ये व्हाटसएप !!!

व्यंग्य लेख

कभी-

कभी बड़ी हास्यास्पद स्थिति बन जाती है ...तब खुद पर ही तरस आता है कि खुद पर हँसे या शर्मिंदा हों। मेरी और मेरे पति की एक आदत है... हम जब भी कुछ भी लिखते हैं तो सबसे पहले श्रोता या पाठक हम ही एक दूसरे के होते हैं...और इतना ही नहीं ...एक दूसरे को सलाह भी देते हैं ..और उस सलाह को माने या ना माने ये तो हम दोनों का ही मूलभूत अधिकार है ही ..इसमें कोन्हूँ दो राय हैं क्या...?

हमेशा की तरह हमने यानि कि मैंने...हमने कहने से लगता है कि जोन्हूँ हम कहीं के राजा महाराजा हों या महारानी हों...तो अब हम ..बस हम ही लिखेंगे ...क्योंकि ज़िंदगी में बढ़िया वाला फील भी तो आना चाहिए कि नाहि? बोलो तो जरा? हाँ ये हुई ना कोन्हूँ आनंद देने वाली बात...तो हमने गज़ल लिखी और खिसका दी अपने पतिदेव के व्हाट्सएप पर। भई अब क्या बताएँ इस व्हाट्सएप ने भी सच्ची मायने में बस थ्हारा म्हारा या फिर यूँ कह लो कि सगले जगत का खून ही पी रक्खा है। अब जिसको देक्खो वही अपने ग्रुप की दुकान खोलकर बैठ्ठा है। अब किसकी दुकान कितनी चलती है हमें इससे क्या लेना देना। अब जिसका जैसा माल होगा उसकी बिक्री भी वैसी ही होगी। अब आप नूँ कहोगे कि विदेश में बैठ के कैसी भाषा बोल्ले है ये छोरी...भई एक बात बता दूँ मुझे भाषा से कुछ घना ही प्यार है ...मैं भाषा की मास्टरनी हूँ जी...तो थोड़ी-थोड़ी सारी भाषा पर अपना कमांड चाहत्ती हूँ...पर चलो अपनी भाषा में बात करती हूँ ...बाकी भाषा का ज्ञान बाँटने के लिए ये देवी फिर अवतरित होंगीं।

अरे विषय से भटकने की आदत कहाँ से आ गयी हमारी... लगता है कि कोन्हूँ जन्म में हम भी नेता-वेता रहे होंगे। हाँ तो बात कर रहे थे ग़ज़ल की। अब पहले तो ग़ज़ल लिखने में पसीने छूट गये...भई देक्खो ऐसा है कि जिब खुद से भाव मन में उमड़-घुमड़ करैं तो गज़ल फ़टाक से जहन में आ जात्ती है और हम टमाक से उसे टिपका देत्ते हैं अपने मोबाइल फ़ोन के नोट्स में...पर ई तो ठहरी ज़बरिया ग़ज़ल यानी ज़बरदस्ती लिखने वाली ग़ज़ल ...यानि कि तरही ग़ज़ल। किसी तरह से पाँच शेर बन ही गए ..अरे आप हर बात ग़लत ही क्यों समझते हो भई ..हम बकरी और शेर की बात नाहि कर रहें हैं भाई...हम तो ग़ज़ल के शेर की बात कर रहे हैं यानि कि दो लाइनें जो गज़ल में लिखते हैं जिसमें मतला, बहर, क़ाफ़िया इतना सब कुछ होता है ...उस शेर की बात कर रहे हैं...तो अब हर हफ़्ते इस तरह के शेरों को पकड़कर दो तरही ग़ज़लों में क़ैद कर देना आसान बात है का ...जरा करके तो दिखाओ तब जाने।

अरे! लगता है कि हम फिर भटक गए..अरे! हमें तो गोल-गोल घूमने की आदत सी हो गयी है ...इब पूच्छो क्यों? क्योंकि हमारी जोगरफी तो है ही माशाअल्लाह। हम एक दिन चल दिए शार्पिंग का मूड बनाकर तो जा पहुँचे "गूची" के शो रूम पर...अब हम कोई छोटी हस्ती तो हैं नहीं कि कहीं से कुछ भी खरीद लें...हम तो ठहरे खानदानी रईस... हमारे बाप ही नहीं...हमारे तो दादा-परदादा भी "गूची" और " शनाल" से नीचे शार्पिंग ही नहीं करते थे, तो हमें तो अपनी ख़ानदानी रीत को आगे बढ़ाना ही था। अब हमने ख़ूब दबाकर शार्पिंग की...बाहर निकले तो सोचा थोड़ी पेट पूजा हो जाए। अब हम चले जा रहे हैं ..चले जा रहे हैं पर पता नहीं आज ये फ़ूड कोर्ट कहाँ चला गया ? कहीं भी नहीं दिख रहा...यहीं तो था ...गूची की शॉप से बाहर निकलो और बस आ गया...पर आज तो पेट में चूहों ने कुछ ज़्यादा ही उधम मचा दिया और फ़ूड कोर्ट है कि मिल ही नहीं रहा ..दोनों हाथ इतने सारे बैग से भरे हुए कि उठ भी नहीं रहे और पेट है कि एकदम खाली...उस पर चूहों का क्रिकेट मैच बिना किसी के आऊट हुए चल रहा था...पर हम कहाँ निराश होने वालों में से हैं हम तो कदम दर कदम बढ़ते चले गए और सामने जो देखा तो हमें अपने ऊपर हमेशा की तरह बहुत तरस आया...क्योंकि हम जहाँ से चले थे "गूची" शॉप से वापस वहीं आ खड़े हुए। ये नयी बात नहीं है अक्सर ही ऐसा होता है...याद करके चलते हैं कि शॉप से बाएँ जाना है पर ऐसा तो तब होता है ना जब हम शॉप में जा रहे होते हैं... पर जब शॉप से आ रहे होते हैं तो

चलता...अब ये शायद "गूची" की शार्पिंग का नशा हम पर सवार रहता है या यूँ कहो कि हम हर समय ख़्यालों में खोए रहते हैं इसलिए ऐसा होता है...अरे भई अब आपका क्या करें हर बात को आप ग़लत जगह ही क्यूँ ले जाते हो.. .हमें तो समझ ही नहीं आता...ख़्याल से मेरा मतलब उस ख़्याल से था जो हर लेखक या कवि के मन में कूदते-फाँदते रहते हैं ...अठखेलियाँ करते हैं ...ये कूद-फाँद ये अठखेलियाँ तब तक चलती रहती हैं जब तक कि उन्हें सही दिशा ना मिल जाए ...जब दिशा सही मिल जाती है तब जन्म होता है कविता या कहानी का। अब उसी ख्याल के बंदर को नचा रहे थे हम ..और गोल-गोल घूमकर नाच गए खुद ही। पर इस सब में एक बात बहुत अच्छी हुई कि एक मतला बन गया ...और चंद शेर भी। मतला आप भी देखें ...जो कुछ इस तरह था...

तेरी चाहत, पे फ़िदा, ख़ून-ए-जिगर, हमने किया
साथ तेरा, जो मिला, शब को सहर, हमने किया

हमने सोचा कि इस ग़ज़ल को इस्लाह के लिए पतिदेव को भेज दें फिर आगे की यात्रा शुरू करेंगे...तो भेज दी ग़ज़ल पतिदेव को...जैसे ही सेंड पर हाथ आया पेट में चूहों ने जमाकर लात मारी। मैसेज सेंड तो हो गया हमने अब चूहों की तरफ़ ध्यान दिया और हारकर मैप का सहारा लिया और पहुँच गये फूड कोर्ट। जैसे ही छोले भटूरे पेट में पहुँचे अंतिम पारी खेल रहे चूहों ने भी भाग-भाग कर सभी छोले और भटूरे बड़ी मुस्तैदी से लपक लिए...मेरे पेट के चूहे भी बीस साल विदेश में रहने के बाद भी पूरे भारतीय हैं ...तभी तो जब भी इनको भारतीय खाना, वो भी बाहर का मिलता है तब ये गोल्ड मैडल लेकर ही दम लेते हैं।

हम खुश थे कि आज तो दिन बन गया सब कुछ बहुत अच्छा -अच्छा ही हुआ शाम तक...एक ग़ज़ल भी लिख डाली और "गूची" "शनाल" की शॉपिंग भी। अब हमने मोबाइल पर्स से निकाला और देखना चाहा कि क्या जवाब आया है पतिदेव का ...पर देखा...तो कोई जवाब नहीं आया.. हमने सोचा ...दो बातें हुई होंगी...या तो ग़ज़ल कुछ ऐसी लिखी गयी कि जनाब होश ही खो बैठे होंगे और उनको सूझ नहीं रहा होगा कि वो कहें भी तो क्या कहें या दूसरी बात ये रही होगी कि वो सोच रहे होंगे कि सौईयों ग़ज़ल लिख देने वाली मेरी पत्नी ने आज ये क्या कूड़ा परोस दिया मेरे सामने...अच्छा ख़ासा ज़बरदस्ती का अंग्रेज़ी नाश्ता "व्हीट बिक्स" खाकर सुबह निकला था...लगता है सब निकल जाएगा कुछ मतली सी फील हो रही है आज तो लंच ही क्या डिनर भी गले से ना उतरेगा... इस ग़ज़ल को पढ़कर...हम इन सब बातों में अपने दिमाग़ के घोड़ों को घास-वास खिलाकर दौड़ा ही रहे थे कि जवाब आया... जवाब आप देखें...

बाएँ कब दाएँ में बदल जाता है हमें तो पता ही नहीं
चाहा तो मैंन्ने भी ता तुझ पर फ़िदा तेरे पे ना होक्के किसी और पे हुआ था मैं...कितनी ही चिट्ठी लिक्खी थी मैंन्ने तुझे दिल तै ख़ून काढ कै पर तुझ पै असर कोन्ना हुआ...इब सोच्चूँ कि तू ही मिल जात्ती तो तेरे गैल विदेश भी घूमने को मिल जात्ता...यो नंबर विदेश का है मेरे साइबर वाला कह रा था...इब तुझे तो म्हारा साथ मिल गा जैसा कि तन्नै लिक्खा... पर मन्नै तो ना मिला... इब तू एक काम कर मन्नै तू अपना पता भेज दै कौन सा सहर है? शब कुछ लिख कै भेज दै मैं तो अब तेरे पास आऊँगा जिब तन्नै इतना सब मुझे लिक्खा...पर आग्गे तै चिट्ठी जब लिक्खै तब यू भाषा ना लिखियो मन्नै समझने में बड़ी दिक़्क़त सी आई वैसे यूँ तो मैं समझ गया जो तुन्नै लिक्खा ...

अब ये पढ़कर हमें तो बुरी तरह चक्कर आ गया कि आज हमारे पतिदेव को किसी ने पिला दी शायद ...क्योंकि वो तो पीते ही नहीं...ये क्या लिख भेजा उन्होंने...फिर से हमने रिप्लाई देने को मैसेज देखा, तो वो पतिदेव का नहीं था...अब डर और गुस्सा हमारे दिमाग़ पर हावी हो गया कि किसकी इतनी हिम्मत हो गयी जो हमें ये सब लिख दिया...स्कूल से लड़कों को कूटती चली आ रही भावना से कोई इतनी हिम्मत कैसे कर सकता है..?
मैंने ग़ुस्से से काँपते हाथों को क़ाबू में किया और नाम पढ़ने का प्रयास किया तो पाया ये मैसेज मेरी एक बहुत ही चुलबुली महिला मित्र का था...जिसका खाना कभी हज़म ही नहीं होता बिना किसी की टाँग खींचे ..आज मेरा नंबर भी आ ही गया टाँग खींचने का क्योंकि मेरे पतिदेव और मेरी दोस्त की नाम राशि एक होने से मैसेज उसको चला गया ..उसने मतले की चीर फाड़ करके खुद का खाना तो हज़म कर लिया पर मेरा ब्लड- प्रेशर बढ़ा दिया...पर सारी गलती उन चूहों की थी जिन्होंने मैसेज सेंड करते वक़्त मुझे लात मारी थी ...तभी तो ये अनर्थ हो गया... अब इतने सारे व्हाट्सएप पर जुड़े लोगों को दोष दूँ? या एक टाइम पर इतने सारे काम करने को दोष दूँ? या फिर ये कह दूँ कि इन सब बातों के चलते मेरा ये लेख बन गया...ये आप सब पर ही छोड़ देती हूँ आप क्या मानते हैं..।

***

प्रशांत शर्मा
बिश्नोली-गौतमबुद्ध नगर-उत्तर प्रदेश—ps@klfhouse.com

व्यक्तिगत और व्यावसायिक बर्नआउट

कारण और निवारण

लेख

आजकल हर व्यक्ति, चाहे वह शहर में हो या गांव में, मानसिक और शारीरिक थकान महसूस कर रहा है। इसे हम बर्नआउट कहते हैं। बर्नआउट से न केवल हमारे व्यक्तिगत जीवन, बल्कि हमारा पेशेवर जीवन भी प्रभावित होता है। लेकिन न्यूरो-लिंग्विस्टिक प्रोग्रामिंग (NLP) की तकनीकें बर्नआउट को समझने और इससे उबरने में मदद कर सकती हैं। आइए जानते हैं 5 प्रमुख कारण और उनके समाधान:

1. लक्ष्य की अस्पष्टता का अभाव

जब व्यक्ति के जीवन में कोई स्पष्ट उद्देश्य नहीं होता, तो वह असमंजस की स्थिति में आ जाता है। ग्रामीण युवाओं के लिए ये समस्या आम है, क्योंकि कई बार उन्हें शिक्षा या रोजगार के सही मार्गदर्शन की कमी होती है।

NLP समाधान: NLP की मदद से आप अपने जीवन के उद्देश्यों को स्पष्ट कर सकते हैं। "स्वोट विश्लेषण" जैसी तकनीक से आप अपने कौशल, कमजोरियों, अवसरों, और खतरों को समझकर अपने लक्ष्य तय कर सकते हैं।

2. दबाव की निरंतरता और तनाव

चाहे कृषि से जुड़ा काम हो या पढ़ाई, लगातार दबाव में रहने से व्यक्ति मानसिक थकान महसूस करता है। बिना विश्राम के काम करने से तन और मन दोनों थक जाते हैं।

NLP समाधान: NLP की "एंकरिंग" तकनीक से आप मानसिक तनाव को कम कर सकते हैं। गहरी साँस लेने और ध्यान केंद्रित करने की प्रक्रिया से आप अपनी मानसिक ऊर्जा को पुनः जागृत कर सकते हैं।

3. खराब समय प्रबंधन

समय का सही ढंग से उपयोग न करना बर्नआउट का बड़ा कारण हो सकता है। जब हम समय का प्रबंधन नहीं करते, तो काम के बोझ से दबाव महसूस होता है।

NLP समाधान: NLP की "चंकींग डाउन" तकनीक का उपयोग करके आप बड़े कार्यों को छोटे-छोटे हिस्सों में बाँट सकते हैं। इससे समय का सही उपयोग होगा और काम में मानसिक थकान कम होगी।

4. आत्म-संदेह और आत्म-विश्वास की कमी

ग्रामीण युवाओं में आत्म-विश्वास की कमी होती है, खासकर जब वे शहर के अधिक पढ़े-लिखे युवाओं के सामने होते हैं। आत्म-संदेह बर्नआउट का कारण बन सकता है।

NLP समाधान: NLP की "विज़ुअलाइजेशन" तकनीक का प्रयोग करके आप अपने भीतर की छिपी ताकत और क्षमता को देख सकते हैं। यह तकनीक आपके आत्म-विश्वास को बढ़ाने में मदद करती है।

5. कार्य और जीवन का असंतुलन

जब व्यक्ति अपने काम और व्यक्तिगत जीवन के बीच संतुलन नहीं बना पाता है, तो वह तनाव में आ जाता है। इससे न केवल उसका स्वास्थ्य प्रभावित होता है, बल्कि रिश्ते भी प्रभावित होते हैं।

NLP समाधान: NLP की "फ्यूचर पेसिंग" तकनीक की मदद से आप अपने काम और जीवन के बीच बेहतर तालमेल बिठा सकते हैं। यह तकनीक आपको भविष्य में सही समय और ऊर्जा का प्रबंधन करने में मदद करती है।

निष्कर्ष:

बर्नआउट से बचने के लिए यह जरूरी है कि हम अपने मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य का ध्यान रखें। NLP की तकनीकों का उपयोग करके हम अपने जीवन को संतुलित और सकारात्मक बना सकते हैं। ग्रामीण युवा भी इन सरल तकनीकों का उपयोग कर अपने जीवन को दिशा दे सकते हैं।

एक सुझाव: पाठक इसे गाँव के पुस्तकालय या पंचायत भवन में पोस्टर या ब्रोशर के रूप में वितरित कर सकते हैं। चित्रात्मक और सरल भाषा से उन्हें बर्नआउट को पहचानने और इससे निपटने में मदद मिलेगी।

***

सुरेश चंद शर्मा
फरीदाबाद-हरियाणा मो. 9953091619

मतदान के प्रति घातक उदासीनता

लेख

वर्ष 2024 में केंद्र तथा राज्यों के लिए नयी सरकार के गठन के लिए हुए मतदान पर नजर डालें तो कई क्षेत्रों में मतदान का प्रतिशत बेहद कम दिखाई दे रहा है, जो चिंता का विषय है। मतदान करने की बात चलने पर प्रायः जनसामान्य के मुख से यह सुनने को मिलता है कि मेरे एक वोट से क्या होने वाला है ! यह कथन न केवल संवेधानिक दायित्व के प्रति उनकी उदासीनता है बल्कि उनके एक मत के महत्व से उनकी अनभिज्ञता को भी दर्शाता है। सर्व विदित है कि केवल एक सांसद या विधायक से किसी सरकार का गठन अथवा पतन हो सकता है और केवल एक मत से भी कोई सांसद या विधायक विजयी अथवा पराजित हो सकता है। कहना न होगा कि अनेक मतदाता चुनाव के दिन तो मतदान करने के स्थान पर पिकनिक मनाने चले जाते हैं और बाद में नाकारा, कमजोर अथवा भृष्ट सरकार बनने पर पांच सालों तक उसे कोसते रहते हैं। कभी–कभी पढ़े-लिखे मतदाता भी रामचरित मानस की इस चोपाई को गलत संदर्भ में उद्धृत करते हैं-

"कोउ नृप होई हमै का हानि,
चेरी छांड़ि कि होइब रानी."

जबकि रामचरित मानस में भी इसका कदापि वह अर्थ नहीं है जो लगाया जाता है। वास्तव में, राम को वनवास तथा भरत को राजगद्दी देने के लिए राजा दशरथ से वर मांगने हेतु जब दासी मन्थरा महारानी कैकेई को सुझाव देती है तो महारानी कैकेई उस पर अत्यधिक क्रोधित होतीं हैं क्योंकि वे राम को भरत से कहीं अधिक प्रेम करतीं थीं। उस समय मंथरा महारानी का क्रोध शांत करने के लिए अपनी सफाई देते हुए कहना चाहती है कि उनके द्वारा वर मांगने से उसका अर्थात मंथरा का कोई निजी लाभ सिद्ध नहीं होने वाला और वह दासी ही रहेगी, कभी महारानी नहीं बनेंगी, जबकि सामान्य रूप से उक्त चौपाई को बार-बार राजनीति के प्रति उदासीनता दर्शाने के लिए उद्धृत किया जाता है जो लोकतंत्र तथा जनकल्याणकारी सरकार के गठन के लिए कतई हितकारी नहीं है।

इस तथ्य से सभी अवगत हैं किसी भी राष्ट्र की दशा ओर दिशा का निर्धारण वहां की सरकार द्वारा ही किया जाता है और सरकार का नेतृत्व राजनैतिक दलों के नेताओं द्वारा जनता की इच्छा से चुने जाने के उपरांत किया जाता है तथा मतदान के द्वारा यह सारी प्रक्रिया पूर्ण की जाती है । प्रश्न यह है कि कितने लोग राजनीतिक दलों के घोषणा-पत्रों पर नजर डालते हैं? उनकी नीतियों, चाल चरित्रों में रूचि रखते हैं? यदि मतदाता सदैव राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक घटनाक्रमों तथा उनसे निपटने के सरकारी उपायों पर सतत रूप से पैनी दृष्टि नहीं रखेंगे तो चुनाव के समय उन्हें राजनेताओं द्वारा मुफ्त राशन, बिजली, पानी, कर्ज़ माफ़ी आदि प्रलोभन देकर अथवा जाति, धर्म के नाम पर आसानी से बहकाया जा सकेगा और इस तरह वे अपने कुत्सिक स्वार्थों की पूर्ति में सफल होते रहेंगे। नागरिकों में

राजनीतिक समझ तथा अपने मताधिकार की उपयोगिता के प्रति जागरूकता की कमी ही मुख्य कारण है कि जो आजादी के सात दशक से भी अधिक की अवधि बीत जाने के बावजूद भारत में वह सामाजिक एवं आर्थिक समानता अब-तक कायम नहीं हो सकी जिसका स्वप्न स्वाधीनता की लड़ाई लड़ने वाले बलिदानियों ने देखा था। राष्ट्रकवि दिनकर जी कोतभी तो लिखना पड़ा हैं :-

"शान्ति नहीं होगी जब-तक,
सुख-भाग न नर का सम हो,
नहीं किसी को बहुत अधिक हो,
नहीं किसी को कम हो."

शिक्षा की कमी के कारण मतदाताओं में संविधान प्रदत्त अधिकारों तथा कर्तव्यों के विषय में जानकारी का अभाव देखा जाता है जिसका परिणाम होता है कि अपराधी,माफिया और दबंग आराम से देश की संसद अथवा विधानसभा के माननीय सदस्य बन जाते हैं और ऐसे निकृष्ट लोग सत्ता पर आसीन होने के पश्चात क्या कभी किसी का भला करेंगे, कभी नहीं। यह देश का दुर्भाग्य ही कहा जायगा कि राजनीति की अच्छी जानकारी रखने वाले अभिजात्य वर्ग के शिक्षित लोग मतदान करने जाते ही नहीं हैं जबकि अनपढ़, जाहिल लोगों को धन,बल तथा तरह-तरह के लालच के सहारे उपरोक्त राजनेता मतदान केन्द्रों तक ले जाने में सफल रहते हैं तथा संख्याबल अधिक होने के कारण वे अपने नापाक मंसूबों में कामयाबी हासिल कर लेते हैं। सरल शब्दों में कहें तो यदि पढ़े-लिखे तथा राजनीतिक रूप से जागरूक लोग समझबूझ कर सुयोग्य, चरित्रवान, समाजसेवियों, राष्ट्रभक्तों को संसद अथवा विधानसभाओं में चुनकर नहीं भेजेंगे तो उन पर अनपढ़, जाहिल ओर गंवार लोगों द्वारा चुने गए जन प्रतिनिधि ही शासन करेंगे तथा वे देश में परिवारवाद, भृष्टाचार, मंहगाई, बेरोजगारी, अस्थिरता आदि समस्याओं के लिए कभी किसी को दोषी नहीं ठहरा पाएंगे।

लोकतंत्र की सफलता के लिए देश के मतदाताओं का शिक्षित, जागरूक एवं राष्ट्रप्रेमी होना आवश्यक है। इसके लिए सरकार उच्च माध्यमिक अथवा स्नातक स्तर पर अनिवार्य रूप से पढाए जाने वाले एक ऐसे संक्षिप्त पाठ्यक्रम की व्यवस्था कर सकती है जिसमें मतदान की महत्ता एक अच्छे नागरिक के अधिकार एवं कर्तव्यों को शामिल किया गया हो। इसमें केंद्र एवं राज्य सरकार के गठन, उसके कामकाज का भी विवरण शामिल होना चाहिए। इसी क्रम में, देशहित में मतदान अनिवार्य करने की दिशा में भी कदम बढ़ाया जा सकता है। साथ ही, आधुनिक युग की आवश्यकताओं तथा बदलते परिवेश को देखते हुए सरकारी कर्मचारियों की तरह राजनेताओं के लिए भी कुछ अनिवार्य शेक्षिक योग्यताएं,उनके चरित्र के सत्यापन आदि निर्धारित करने के लिए संविधान में आवश्यक संशोधन किया जा सकता है जिससे अयोग्य, माफिया, बाहुबली तथा आपराधिक पृष्ठभूमि रखने वाले लोग राजनीति में प्रवेश ही न कर सकें तथा संसद एवं विधानसभा में सुयोग्य व्यक्तियों का पदार्पण हो तभी भारत में वास्तविक लोकतंत्र कायम हो सकेगा।

***

गीता रस्तोगी 'गीतांजलि'
मोदीनगर (उत्तर प्रदेश) मो. 8279798054

हमारे रामजी से राम राम

लेख

हमारे रामजी से राम-राम, कहियो जी हनुमान।।
कहियो जी हनुमान, कहियो जी हनुमान।।

श्रीरामकथा की महिमा अनंत है। कहते हैं जहाँ रामकथा होती है, वहाँ महावीर हनुमान बजरंगबली जी सूक्ष्मरूप में स्वयं आ विराजते हैं। हनुमानजी के कान रामकथा सुनने के लिए सदैव लालायित रहते हैं। अतः वह बिना अवसर गंवाए श्रीरामकथा का आनंद लेने के लिए स्वयं उपस्थित हो जाते हैं। तथापि रामजी व हनुमानजी के जो परमभक्त हैं, सर्वप्रथम हनुमानजी का आदरपूर्वक आह्वान कर, उनको सादर नमन कर, उन्हें आसन प्रदान करते हैं, तत्पश्चात् श्री रामकथा का पठन-पाठन, कथन-श्रवण प्रारम्भ करते हैं।

श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। वे स्वयं तो समस्त मर्यादाओं का निर्वाह करते ही हैं, साथ ही रामायण के सभी कथापात्र अपनी-अपनी मर्यादाओं का समुचित निर्वाह करते हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि कोई व्यक्ति जिस प्रकार के साहित्य का अध्ययन करता है, वह वैसा ही हो जाता है। इस दृष्टि से श्रीरामचरितमानस का नियमित अध्ययन समाज के एक उत्कृष्ट स्वरूप के निर्माण में एक सकारात्मक भूमिका अदा करता है। श्रीरामकथा का एक-एक चरित्र श्री राम सा ही है जो मर्यादाओं से बंधा और मानव जीवन की समस्त त्रासदियों से कैसे मुक्त होना है, इस दिशा में विवेकदृष्टि को जागृत करता है। (जिन खोजा तिन पाइयाँ) यह मनुष्य की अपनी बुद्धि पर निर्भर करता है कि वह क्या खोजता है।

श्रीरामचरितमानस के अनेक पत्रों में से एक पात्र केवट भी है। केवट, जिसका व्यवसाय नौकायन है, सुबह से शाम तक सरयू नदी में नाव चलाता है और यात्रियों को इस पार से उस पार पहुंचाता है। वह दो वक्त की रोटी अत्यन्त श्रमपूर्वक कमाता है और अपने परिवार का पालन पोषण करते हुए शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करता है। उसका मन सदा भगवान की भक्ति में ही लीन रहता है व नेत्र भगवान के दर्शनों की लालसा में इधर-उधर निहारते हैं। आज हम यहाँ श्री राम-केवट संवाद की चर्चा करेंगे। यह प्रसङ्ग श्री रामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड से उद्धृत है। यह अत्यन्त ही रोचक प्रसंग है जो हमें केवट की प्रभु श्रीरामभक्ति की पराकाष्ठा के दर्शन कराता है।

यह प्रकरण उस समय का है, जब श्रीरामजी को वनवास मिला और वह अयोध्या नगरी को छोड़कर वन की ओर जा रहे थे। स्नेह व प्रेम के वशीभूत भ्राता लक्ष्मण व माता सीता भी जिद करके साथ चल दिए जबकि उन्हें वनवास नहीं मिला था। अयोध्या नगरी के सभी लोग अत्यधिक चिंतित थे कि किस प्रकार राजमहलों में पले राजकुमार व राजकुमारी सीता जो वास्तव में अयोध्या की महारानी हैं, वन में कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत कर पाएंगे। रथ से उतर कर वे सब गंगा (सरयू नदी) किनारे आ गए थे जहाँ से उन्हें उस पार जाना था। श्रीराम ने सुमंत्र जी से कहा कि गंगा पार कैसे जाएं, इसकी कुछ व्यवस्था होनी चाहिए। रामजी

के मित्र निषाद राज गुह भी साथ थे। वह उन्हें अपने मित्र केवट के बारे में बताने लगे। उन्होंने सुझाया कि केवट उनको गंगा नदी से पार ले जा सकता है क्योंकि उसके पास एक नौका भी है और वह नौका को खेना भी जानता है। बुलाने पर जब केवट आया तो प्रभु के दर्शन करके अभिभूत हो गया। रामजी बोले, "केवट भाई, तुम अपनी नाव ले आओ और हमें गंगा मैया से पार ले चलो।" केवट कुछ और ही तरह की बातें कहने लगा। वह बोला, “हे राम ! मैं तो गरीब प्राणी हूं। दिन रात मेहनत मजदूरी करके में दो वक्त की रोटी कमाता हूं। तुम्हारे चक्कर में मैं नहीं आने वाला। मैंने सुना है कि तुम्हारे छूने भर से पत्थर औरत में बदल जाता है। मेरे साथ ऐसा हुआ तो मैं कहां जाऊंगा? मेरी तो रोजी रोटी ही मारी जाएगी। मेरी नाव तो लकड़ी की बनी हुई है। मुझे डर है कि अगर तुम्हारे चरण की धूल मेरी नाव को लग गई तो यह भी निश्चित रूप से औरत ही बन जाएगी। तब मैं गरीब तो बिना बात ही मारा जाऊँगा। मैं ऐसा कोई खतरा मोल नहीं ले सकता।"

मागी नाव न केवट आना । कहइ तुम्हार मरम मैं जाना ।।
चरणकमलरज कहुँ सबु कहई। मानुष करनि मूरि कछु अयई।।

रामजी व केवट की बातों का लक्ष्मण जी व सीता जी आनन्द ले रहे थे। केवट बच्चों की तरह जिद कर रहा था व रामजी उसे बड़े प्रेम से निहार रहा था। रामजी ने कहा कि पार तो उन्हें जाना ही है। अब उन्हें क्या करना चाहिए, इसका उपाय भी वह स्वयं ही बता दे। तब केवट ने कहा, "पहले मैं आपके चरण पखारूंगा। तब ही कोई बात बनेगी।" कहकर वह रामजी के मुंह की ओर देखने लगा। जब बहुत देर हो गई तब उन्होंने केवट को पग पखारने की इजाज़त दे दी। केवट बहुत खुश हुआ और कठौती में गंगाजल भर कर ले आया। बड़े प्रेम से उसने प्रभु के पग पखारे व परिवार सहित चरणामृत का पान किया।

पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार ।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार ।।

तब वह बड़े ही प्रेम पूर्वक श्रीराम को सीता व लक्ष्मण सहित गंगाजी से पार ले गया। सब नाव से उतर कर बालू रेत में खड़े हो गए। प्रभु सोचने लगे कि उतराई में इसको क्या दें। तब माता सीता ने उसे अपनी अँगूठी उतारी और उसे देने का प्रयत्न किया। रामजी ने कहा ,"केवट ! तुम ने मुझे इस गंगा नदी से पार उतारकर मुझ पर बड़ा उपकार किया है। तुम उतराई क्या लोगे? बताओ मैं तुम्हें उतराई देना चाहता हूं।"

केवट इस बात से बहुत परेशान हो गया और बोला, “हे भगवान ! आज तक मैं केवल मजदूरी ही कर रहा था। आज मुझे सेवा का अवसर मिला और मुझे स्वतः ही सब कुछ मिल गया। अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। आप लौटती बार जो भी देंगे, वो मैं ले लूँगा।" रामजी की उसके आगे एक न चली ।

नाथ आज मैं काह न पावा । मिटे दोष दुख दारिद दावा ।।
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्हि बिधि बनि भलि भूरी।।

जब रामजी ने पुनः आग्रह किया तब केवट कहने लगा, “आप मुझे अपने श्री चरणों में निश्चल भक्ति का वरदान दें।" तब करुणानिधान भगवान श्री रामजी ने उसे अपनी निश्चल भक्ति का वरदान दिया ।

बहुत कीन्ह प्रभु लखन सियँनहिं कछु केवटु लेइ ।
बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ ।।

ऐसी है भगवदभक्ति की महिमा। जो नि:स्वार्थ भाव से भगवान की सेवा करता है, भगवान उसको जन्म-जन्म की दरिद्रता से मुक्त कर देते हैं और सदा के लिए अमर कर देते हैं। जब तक संसार में रामकथा गाई जाएगी तब तक केवट का नाम भी अमर रहेगा।

***

डॉ. देवकीनंदन शर्मा
गुलावठी-बुलंदशहर-उ.प्र. , मो. 9837573250

भारत बोध और राष्ट्रीय अस्मिता का पर्याय: हिन्दी

लेख

हिन्दी दिवस आते ही विमर्शों का दौर शुरू हो जाता है, जो हिन्दी पखवाड़ा में व्यापक रूप ले लेता है। हम सभी जानते हैं कि 14 सितम्बर 1949 को संवैधानिक रूप से हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दिया गया था। थोड़ा पीछे पलटकर देखें तो पता चलता है कि स्वाधीनता आंदोलन के समय ही हिन्दी देश के लिए सम्पर्क भाषा बन गई थी। बंग्ला भाषी केशव चन्द्र सेन, गुजराती भाषी स्वामी दयानंद सरस्वती, नर्मदालाल शंकर दवे, महात्मा गांधी, महाराष्ट्र के लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक आदि प्रभृति विभूतियों ने हिन्दी को सम्पर्क भाषा के रूप में प्रयोग करते हुए राष्ट्र भाषा बनाने पर जोर दिया था। इस श्रृंखला में सुभाषचंद्र बोस और सी.राजगोपालाचार्य के नाम भी स्मरणीय हैं।

स्वाधीन भारत में अनेक अवरोधों के बावजूद हिन्दी अनवरत रूप से विकास पथ पर अग्रसर है। नई शिक्षा नीति 2020 में मातृभाषा में पठन-पाठन की व्यवस्था ने हिन्दी को अब आई आई टी से लेकर आई आई एम तक पंहुचा दिया है। आज मानविकी के अलावा विधि,वाणिज्य, विज्ञान, प्रबंधन जैसे क्षेत्रों में हिन्दी माध्यम का वर्चस्व बढ रहा है। अभिनव तकनीकी के द्वारा ई-पेपर,ई- जरनल एवं ई-बुक के रूप में हिन्दी वैश्विक पटल पर सुस्थापित हो चुकी है। उपग्रह प्रसारित चैनलों,सिनेमा और ओ टी टी तक हिन्दी का परचम लहरा रहा है। आज विश्व में 65 करोड लोगों की पहली भाषा हिन्दी है। हमें नहीं भूलना चाहिए कि हिन्दी के इस वैश्विक रूप को बनाने संवारने में भारत की बोलियों की अहम भूमिका रही है। साथ ही, हमारे संतों,भक्तों और साहित्यकारों के साथ अप्रवासी भारतीयों का योगदान भी कम नहीं है।

आज हिन्दी भारत के बाहर फीजी और संयुक्त अरब अमीरात में आधिकारिक भाषा बन चुकी है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी अपना एक्स हैंडल और वेबसाइट हिन्दी में आरम्भ कर दी है। सच तो यह है कि भारत की विकासमान वैश्विक स्थिति में हिन्दी की स्वीकार्यता और व्याप्ति हमें आशान्वित ही नहीं, बल्कि गौरवांवित भी करती है। आवश्यकता इस बात की है कि सभी पूर्वाग्रहों और दुराग्रहों को दरकिनार कर नयी पीढी हिन्दी को भारत बोध और राष्ट्रीय अस्मिता का पर्याय समझे।

अरविंद विदेह
लखनऊ-उत्तर प्रदेश, मो. 7408403570

कविताएँ

जीवन-तटिनी के जल को यूँ ...

हे जग के अज्ञात तत्व! तू
कहाँ बसा, क्या तेरा रूप?
हमने तो देखी बचपन में
वह अनुपम थी प्रकृति अनूप!

खिंचे इसी से हम तो तेरे
औ' तेरी रचना की ओर,
जीवन का कृत्रिम वातायन
हमको देता है झकझोर!

हे अव्यक्त शक्ति के स्वामी!
चमत्कार के हे शुभ रूप!
कौन सत्य पाला है तुमने,
दे जीवन का मुझे सुरूप?

यही चाहता हूँ मैं तो प्रभु,
अपनी लघु-सी तृषा बुझाना,
जीवन-तटिनी के जल को यूँ,
सूक्ष्म दृष्टि से लखते जाना!

उदर-खात की ख़ातिर खाते सच को

सभी समस्याओं से बढ़कर
सत्य-समस्या जग में,
कौन कहे सच कौन कह रहा,
मगरमच्छ जब मग में!
उदर खात की भूख मिटाने
खातिर खाते सच को,
भूख मिटे पहले इस जग की
तब न प्रतिष्ठित सच हो!
लेकर के यदि दण्ड हस्त में
मगरमच्छ मारोगे,
स्वयं दाढ़ में उसके जाकर
तुम भी तो हारोगे!

***

डॉ. राम यज्ञ मौर्य
मेरठ-उत्तर प्रदेश, मो. 7060155898

कविता

मज़दूर दिवस

बहुत ढूँढने पर भी
नहीं मिल पाएँगे
इतिहास ग्रन्थों के किसी हाशिए पर
पिरामिड की संकल्पना को आकार देने वाले
चीन की दीवार
लाल क़िले की प्राचीर
ताजमहल की भव्यता को मूर्त करने वाले।

कौन जानता है
मुग़ल गार्डन गुलज़ार करने वाले
माली का नाम
बेबीलोनिया का हैंगिंग गार्डन
किसके दम पर अद्भुत बना
पता है आपको
पढ़ा है कहीं.....

दिव्य और भव्य
कम्बोडिया का अंकोरवाट
कोणार्क का सूर्य मंदिर
मीनाक्षी
तिरुपति
श्रीरंगम या
पुरी के जगन्नाथ मंदिर
अथवा
अनेक आक्रमणों के बाद भी खड़ा
सुशोभित सोमनाथ मंदिर
किसके खुरदरे हाथों ने गढ़ा

माथे का पसीना पोंछते
मंदिर के पत्थर के किसी टुकड़े पर
नहीं खुदा है उनका नाम।

किसी मज़दूर की संज्ञा धारण किए हुए
अनादि से आज तक है कोई पथ
कोई सड़क
निर्माण में जिनका श्रम-जल बहा
है कोई बावड़ी, कुँआ,तालाब
या कि नहर....
उसके नाम।
स्थापत्य के सर्जक
नींव में दबी
अनाम ईंट ही रह जाते
कंगूरा बन चमक नहीं पाते।

युद्ध सेना लड़ती है
मरते सैनिक
जीतता राजा है
इतिहास जिनके कारण बनता है
वे किसी हाशिए पर भी स्थान नहीं पाते
आख़िर क्यों...?
पूरे विश्व में मनाया जाता है
" एक मई मज़दूर दिवस "
क्या किसी मज़दूर को पता है
कि उसका अपना भी है
कोई एक दिन
"मज़दूर दिवस "

***

डॉ. ममता शर्मा
मेरठ-उत्तर प्रदेश मो. 9412486032

कविता

दादू का मान
अम्मा की जान

हृदय तंत्रिका को झंकृत
करने वाले तार हो तुम
लहरों की अठखेलियों की
मृदुल धार हो तुम
सुरों की शहजादी ढोलक की
मीठी थाप हो तुम
आंगन की तितली दादू का मान
अम्मा की जान हो तुम....

हंसकर मुस्कुराकर गुनगुनाकर
जिंदगी को संवारना तुम
सुख दुख को नयनों में सजाकर
जिंदगी को संम्भालना तुम
सपनों को हकीकत बनाकर
जिंदगी का गणित लगाना तुम
आंगन की तितली दादू का मान
अम्मा की जान हो तुम...

विवेकानंद जयंती का अनमोल
उपहार हो तुम
मूल से भी ज्यादा प्यारा
हमारा ब्याज हो तुम

संस्कारों के गहने पहनकर
सम्मानित रहना तुम
आंगन की तितली दादू का मान
अम्मा की जान हो तुम...

कर्म को पूजा समझकर
आगे बढती जाना तुम
सफलता के शिखर चूमकर व
अपनी पहचान बनाना तुम
गगन में उडना मगर
कदम धरा पर ही रखना तुम
आंगन की तितली दादू का मान
अम्मा की जान हो तुम...

***

मंजू सिंह
दिल्ली मो. 9891790176

कविता

इंसानियत क्यूँ आज शर्मशार है

इंसानियत क्यूँ आज शर्मशार है?
हर तरफ मचा ये कैसा हाहाकार है?
नज़रों का कहर भी बढ़ रहा है
दर्द की सूरत भी आज बरकरार है।

मानवता के नाम पर फैल रहा है कैसा ये ज़हर?
अपशब्दों से अपमान, और जज़्बातों का भी क़त्ल
समाज-परिवर्तन की चल रही कैसी ये रीत है?
जहाँ नारी की सुरक्षा अब बन रही अतीत है।
जहाँ पूजनीय है नारी रूप, क्या ये वही संसार है
हर तरफ मचा ये कैसा हाहाकार है?

नारी के आँचल में जा सिमटी है सारी व्यथा,
युग-परिवर्तन के साथ, क्यों नारी का सम्मान घटा
राम-भूमि पर हो रहा कैसा ये रावण-राज है?
समाज में आज़ादी मात्र शब्दों का व्यापार है।
क्या यही हमारी मर्यादा और संस्कार है?
हर तरफ मचा ये कैसा हाहाकार है?

हर अक्स में अलग तस्वीर या चेहरे बदलता ये छल,
इस पावन देव-भूमि पर जल दीखता है थल
किसकी चीखों से गूंज उठा संसार ये सारा है।
ज़िंदगी अंधेरों में अब डूबता एक सिकारा है।
क्यों फिर निर्भया कांड होता बार-बार है?
क्यों बेटियों का होता यहाँ बलात्कार है?
हर तरफ मचा ये कैसा हाहाकार है?

सुनसान सड़क का खौफ, हैवानियत का ये कहर
कांपती है अब ये बचपन की मासूमियत।
बेबस माँ-बाप के सीने में छुपा अंगार है
हौसला तोड़ती खबरों की रफ्तार है।
नारी क्या, नर भी हुआ हैवनियत का शिकार है
हर तरफ मचा ये कैसा हाहाकार है?

चौराहों पर जनते दीप, न्याय ढूंढता सवाल
ये मोमबतियाँ ही हैं अपने कल की मशाल
मुकदमा है, तारीखें हैं, बस सुनवाई जारी है।
कमजोर जिसे समझा है वही एक चिंगारी है।
उठा लिया शस्त्र, अब होने वाला तुझ पर प्रहार है।
हर तरफ मचा ये कैसा हाहाकार है?

***

डॉ. रामगोपाल भारतीय
मेरठ-उत्तर प्रदेश मो 8126481515

ग़ज़लें

(1)

दर्द औ' फ़िक्र की पहचान ही रहने दे मुझे
देवता मत बना इनसान ही रहने दे मुझे

इतनी शोहरत न दे, दौलत न दे, मैं, मैं न रहूँ
ऐसी मुश्किल न कर आसान ही रहने दे मुझे

छीन मत मुझसे किसी फूल-से बच्चे की हँसी
एक मासूम सी मुसकान ही रहने दे मुझे

मुझसे न बम, न किसी किस्म का हथियार बना
बस खिलौने का इक सामान ही रहने दे मुझे

उनको तू कुछ भी बना लोग जो बनना चाहें
मैं हूँ जैसा मेरे भगवान ही रहने दे मुझे

मैं हुनरमंद नहीं हूँ तो कोई बात नहीं
यूँ ही नादान का नादान ही रहने दे मुझे

याद करते हैं तुझे लोग परेशानी में
है यही सच तो परेशान ही रहने दे मुझे

(2)

भुलाके नैतिकता अपनी क्यूं धन के साचे में ढल रहे हैं।
दुखों से बचने को लोग देखो, सुखों के माने बदल रहे हैं।

कहीं हो अन्याय या अनीति, कहाँ भले लोग बोलते हैं
हरेक रिश्ते को लोग अब तो तराजू में धन की तोलते हैं
लिबास बदला है झूठ ने वो कि सच के पैबंद खल रहे हैं।

यहाँ उजालों को ढूँढने हम सदा अंधेरों के घर गये हैं
उठाया पर्दा जो आइनों से तो खुद को ही देख डर गये हैं
ये कैसा सूरज उगा है देखो, सुबह के आँसू निकल रहे हैं।

जिसे देखो वो अपनी आँखों पे एक चश्मा लिए खड़ा है
कोई भी मज़हब हो जात हो, न कुछ भी इंसान से बड़ा है
हमारे इतिहास-पृष्ठ देखो सियासी लपटों में जल रहे हैं।

कहीं पे सूखा है ,बाढ़-तूफां, कहीं पे धरती धधक रही है
हुए हैं कम वृक्ष जबसे वर्षा, वो सर्दी-गर्मी कहाँ रही है
जमीं पे इंसान जबसे बदला, तभी से मौसम बदल रहे हैं।

अजन्मी कन्याओं की जो हत्या गर्भ में ही करते यूँ रहोगे
तो फिर बढेंगी कैसे ये पीढ़ी बताओ माँ फिर किसे कहोगे
न जाने कितनी सुहागिनों को दहेज-दानव निगल रहे हैं।

बनाया था ये समाज हमने तो जीने की संहिताएं भी थीं
जो एक दूजे को जोड़ती थीं दिलों में सम्वेदनाएं भी थीं
हमारे हाथों से मूल्य मानव के धीरे-धीरे फिसल रहे हैं।

***

अरुण शकुन साहिबाबादी
साहिबाबाद-गाजियाबाद-उ.प्र.

ग़ज़लें

(1)

हर गीत के मुखड़े का
मज़मून पुराना है।
वो और जमाना था
ये और जमाना है॥

अपने भी तो अब अपने
अपने से नहीं लगते
इस दौर में अय लोगों
रिश्तों का निभाना है॥

अपनों ने भी अपनाकर
अपनों को ही लूटा है।
इन संसद के लोगों से
अपने को बचाना है॥

मारो हमें चाहे पत्थरों
या ख़ंजरों से शकुन
मैं उसका दिवाना हूँ
वो मेरा दिवाना है॥

हर गीत के मुखड़े का
मज़मून पुराना है
वो और जमाना था
ये और जमाना है॥

(2)

गीत थे कभी अब हम
हो गये भजन यारों।
शूल बन गये हैं अब
थे कभी सुमन यारों॥

देखते थे हम जिनको
टकटकी लगा करके।
चूड़ियों की खनखन में
खो गये वचन यारों।।

मेहंदी उनके हाथों में
पाँव में महावर है।
पचरंगी चुनरिया मे
सज रही दुल्हन यारों।।

मीत ने कलावे से
बांध लिया फिर मुझको।
प्रीत भरी रोली से
कर दिया शकुन यारों।।
आँसुओं की आहुतियां
दे रहे नयन कब से।
वेदना की वेदी पर
हो गये हवन यारों॥

***

पूनम माटिया
दिलशाद गार्डन, दिल्ली, मो. 9312664097

ग़ज़लें

(1)

जो सज़ा से तू डर गया होता
वक़्त से पहले मर गया होता

क्यों तो पिसता तू झूठ-चक्की में
रोज़े-अव्वल जो मुकर गया होता

छोड़ देता जो सब उसी पर, तो
दीन-दुनिया से तर गया होता

अब भी है इंतज़ार सब को ही
क्यों भटकता जो घर गया होता

पल दो पल का जो ख़ुमार होता
वक़्ते-रुख़सत उतर गया होता

(2)

बदगुमानी थी, यक़ीं का पर सफ़र हमने किया
दूर सारी ज़ुल्मतों को बेशतर हमने किया

गुफ़्तगू करती नहीं अब हमसे ही ये चाहतें
राहबर तन्हाइयों को इस क़दर हमने किया

तोड़ दीं ड्योढ़ी पे हमने हसरतों की गुल्लकें
ख़ाहिशों के क़ाफ़िले को दर-ब-दर हमने किया

सर झुका के कर दिया सब कुछ सुपुर्दे-मोहतरम
ज़िंदगी में काम इतना कारगर हमने किया

सारे जुगनू, चाँद-तारे बस यहीं पर आ बसे
दिल में छायी तीरगी को कम अगर हमने किया

***

व्यग्र पाण्डे
गंगापुर सिटी (राजस्थान) मो. 9549165579

हाइकु

गुलाबी ठंड
भाये चंपई आग
मोगरा राग
*****

कनेर बर्फ
रातरानी सी ओस
खेत खामोश
*****

हवा दुश्मन
सिहरे तन मन
लाये कंपन
*****

सुबह लंबी
दोपहर सुहानी
सांझ दिवानी
*****

शीत से भीत
बैठे सिकुड़ कर
चौपाये सारे
*****

जीभ की मस्ती
व्यंजन की बहार
दाँतों पे धार
*****

धरती ओढ़े
सुदूर दूर तक
शॉल धुंध की
*****

ओस के मोती
पत्तों पर बिखरे
सुस्मित सारे

***

मधु वार्ष्णेय
बुलंदशहर-उत्तर प्रदेश—मो. 9410615755

उदयपुर डायरी...
(मांउट आबू से कुंभलगढ़)

यात्रा संस्मरण

माउंट आबू में हमारे तीसरे दिन की सुबह थी और दो दिन से लगातार होती बारिश के बावजूद हमने काफी जगहें घूम ली थीं , बारिश अभी भी लगातार हो रही थी, रुकने का नाम ही नहीं ले रही थी। दिलवाड़ा जैन मंदिर,नक्की लेक के अलावा अरावली पर्वतमाला का उच्चतम बिंदु गुरु शिखर अन्य छोटे बड़े मंदिरो, बाजारों को देखने के उत्साह में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं आई थी, दूसरी तरफ मौसम की खराब स्थिति को भांपकर सरकारी अलर्ट घोषित कर दिया गया था, और माउंट आबू आने-जाने वाले सभी रास्ते बंद कर दिए गए थे। जो पर्यटक माउंट आबू पहुंच चुके थे वह भी मजबूरी वश होटल के बंद कमरों में रहने को मजबूर थे।

माउंट आबू के सभी होटल लॉज फुल थे। दरअसल माउंट आबू से अहमदाबाद अधिक दूर नहीं है गुजरात का बॉर्डर पास ही है, तो गर्मियों के दौरान वीकेंड में गुजराती पर्यटक ठंडक की चाह में माउंट आबू का रुख करते हैं और दो दिन की शानदार ट्रिप के बाद वापस गुजरात लौट जाते हैं, दूसरा कारण जो वहां उपस्थित स्थानीय लड़के ने हमें बताया कि गुजरात में अल्कोहल की बिक्री पर प्रतिबंध के चलते कुछ शौकीन पर्यटक वीकेंड में अपना शौक पूरा करने के लिए माउंट आबू आते हैं। इसलिए वीकेंड में पर्यटकों की काफी गहमा गहमी का माहौल रहता है। शनिवार से ही होटल और लॉज सब बुक हो जाते हैं, ऐसे में माउंट आबू के स्थानीय दुकानदारों की भी अच्छी कमाई हो जाती है।

बहुत खोजबीन और आधा दर्जन होटलों को देखने के पश्चात हमें एक अच्छा होटल मिला था। हमारा होटल एक पहाड़ी ढलान पर था, दूसरी मंजिल पर हमारा कमरा था रूम के बराबर में लंबा कॉरिडोर था जहां से सड़क और बराबर वाले लॉज की पार्किंग नजर आती थी और पीछे वाली साइड में पहाड़ की समतल चोटी से सटी हुई हमारे कमरे की छत्त थी। दो दिन पूरी रात और दिन लगातार बारिश होती रही थी और पहाड़ से पानी इकट्ठा होकर हमारे रूम की खिड़की के बिल्कुल बराबर से अस्थाई धारा बनकर बह रहा था। घरड़ घरड़ की कान फोड़ू डरावनी आवाज के साथ पानी ऊपर पहाड़ से ऐसे गिर रहा था मानो कोई बांध टूटकर बह निकला हो। तेज गति से पानी के गिरने की इतनी डरावनी आवाज मैंने पहले कभी नहीं सुनी थी, तेज हवाओं ने तूफान का रूप ले लिया था, हमने अपने कमरे की बालकनी से बराबर वाले लॉज के पार्किंग में खड़े बोतल पाम के ऊंचे पेड़ों को देखा जो तेज हवा से लहरा कर जड़ से उखड़ने को आमादा थे। हम तीनों डरे सहमे से अपने रूम से बाहर का तूफानी हवाओं के साथ मूसलाधार बारिश का डरावना दृश्य देख रहे थे। सड़क पर घुटनों तक पानी इकट्ठा था। पूरे होटल की बिजली गुल थी और जनरेटर भी तकनीकी खराबी के चलते चालू नहीं था। अनजान जगह और लोगों के बीच इतनी डरावनी रात मैंने ऐसा डर अपनी जिंदगी में कभी महसूस नहीं किया था। हम पूरी रात सो नहीं पाए एक अनजाना सा डर हमें सता रहा था, उस भयानक रात्रि को मैं कभी नहीं भूल सकती। सुबह के पांच बजे थे, हम तीनों उठ कर बैठ गए थे, मैंने ईश्वर से प्रार्थना की जल्दी से मौसम खुल जाए और हम वापस

उदयपुर को प्रस्थान करें।

मैंने अपने बैग से एक माचिस और मोमबत्ती निकालकर जलाई, अपनी लाई डोरी कमरे की खिड़की पर बांध दी और अपने सीले कपड़े सुखा दिए, अपने हाथों बनाए हुए बेसन के लड्डू, नमकीन मठरी और ड्राई फ्रूट्स का नाश्ता सजा दिया, मेरी होशियारी पर पिता पुत्र दोनों बड़े प्रसन्न थे और प्रशंसा भरी दृष्टि से मेरी ओर देख कर मुस्कुरा रहे थे और मैं मन ही मन गर्व से फूली न समा रही थी। चूंकि मैंने काफी यात्राएं की है तो छोटी से छोटी जरूरत की चीजों को यात्रा में सम्हालकर रखने की आदत पड़ चुकी है, लंबी यात्राओं में हमें छोटी से छोटी उपयोगी चीजें हमेशा साथ रखनी चाहिए।

मैंने अपने पहाड़ी प्रवास के दौरान यही जाना है कि पहाड़ दिखने में जितने सुंदर होते हैं उतना ही वहां का जीवन बहुत कष्ट साध्य और जोखिम भरा होता है । और वहां के स्थानीय लोग बहुत खुश दिल, विनम्र, धैर्यवान और जीवट होते हैं। अत्यधिक अल्प सुख सुविधाओं में पले बढ़े इन पहाड़ी लोगों के चेहरे तनाव रहित होते हैं, इनके चेहरे पर हरदम एक सुकून भरी मुस्कुराहट तैरती रहती है।

करीब आठ बजे बारिश थम गई और हवा की तीव्रता भी कम हो गई थी, हमने राहत की सांस ली और ईश्वर का शुक्रिया अदा किया, दस बजे शमीम (ड्राईवर) ने सूचना दी माउंट आबू के सारे आवागमन मार्गो को खोल दिया गया है, हमने माउंट आबू से उदयपुर के लिए प्रस्थान किया। चूंकि तीसरा दिन था पूरा समय हमारे पास था लेकिन लगातार बारिश की वजह से खराब मौसम हमें वहां रुककर और दूसरी दर्शनीय स्थलों को देखने की इजाजत नहीं दे रहा था। इसलिए ही हमने वापस उदयपुर लौटने का निर्णय लिया था। मौसम भीगा भीगा सा था सड़कें जगह जगह क्षति ग्रस्त हो गई थी, बाहर पूरी घाटी में धुंध ही धुंध थी दृश्यता लगातार काफी कम थी। जुलाई के मध्य में जहां दिल्ली अड़तीस चालीस डिग्री के बीच जबरदस्त नमी वाली चिपचिपी गर्मी से कराह रही थी, यहां माउंट आबू में लगातार बारिश के चलते पारे में भारी गिरावट थी हल्की ठंड काबिज थी, गाड़ी का शीशा खोलते ही ठंडी हवा से झुरझुरी आने लगी।

शमीम गाड़ी बहुत संभलकर चला रहा था, चारों ओर फैली हरियाली और मखमली हरी वादियां सब धुंध से ढके हुए थे, मुख्य शहर से बाहर सर्पाकार मोड़ों से फिसलती धीमी गति से हमारी गाड़ी शहर से बाहर निकल रही थी। बीच रास्ते में आकर शमीम ने सुझाव दिया आप चाहे तो कुंभलगढ़ का दुर्ग देख सकते हैं जो मुख्य हाइवे से करीब 15 किमी दूर अलग रास्ते पर था हमने सहमति जताई और कुंभलगढ़ के प्रसिद्ध दुर्ग को देखने निकल पड़े। शमीम (ड्राइवर) सफेद टोपी लगाए जाने क्या गुनगुना रहा था, अचानक जाने उसे क्या सूझा उसने बिना कुछ कहे सुने ही गाड़ी हाई वे से कच्चे उबड़ खाबड़ रास्ते पर डाल दी , हम एक दूसरे को प्रश्न वाचक नजरों से देख ही रहे थे, बोला साब, यहां से शॉर्ट कट रहेगा हम जल्दी पहुंच जाएंगे बस एक गांव को ही पार करना है।

बादल आकाश को पूरी तरह से ढांपे हुए थे, मौसम में गजब की ठंडक थी, चारों ओर समतल चोटी वाली पहाड़ियों से घिरे गांव में मिट्टी के कच्चे घर ही दिखाई पड़ रहे थे कहीं कहीं कोई पत्थरों को चिनकर बनाया पक्का घर दिख जाता था, पूरा इलाका बीहड़ सुनसान उजाड़ सा था, कहने को गांव था लेकिन एक अजीब सी शांति थी वहां कोई चहल पहल या शोर शराबा जैसा कुछ नहीं दिखता था। रास्ते में कहीं कोई इक्का दुक्का गाय दिखती तो कहीं बकरी का कोई झुंड चरते हुए दिखाई दे जाता था, शमीम ने गांव के बीचों बीच रास्ते से गाड़ी निकाली उबड खाबड़ कच्ची सड़क पर गाड़ी उछल रही थी, अब हमें उस गांव में चलती फिरती मानव आकृतियां दिखने लगी थीं, कभी कोई लंबी मूछों वाला बुजुर्ग बड़ी सी पगड़ी पहने लाठी टेकता दिख जाता तो कहीं कोई घाघरा चोली पहने अपनी पारंपरिक वेश भूषा में महिला नजर आ जाती, छोटी छोटी बच्चियों को

उनकी पारंपरिक वेश भूषा में देखकर मैं आश्चर्य चकित थी। मैंने गांवों का जीवन कभी करीब से नहीं देखा था मैं वहां के लोगों के जीवन के बारे में जानने को बहुत उत्सुक थी, उस गांव से गाड़ी गुजर ही रही थी फिर से बारिश होने लगी। लेकिन यह क्या करीब 50 कदम आगे उस गांव को पार करने के लिए एक बरसाती नदी को पार करना था पूरे इलाके में फैली पहाड़ियों से रिस कर आने वाले पानी से वह बरसाती नदी भयंकर रूप धारण किए हुई थी। मटमैले पानी का सैलाब जबरदस्त उफान पर था, तीव्र गति से बहता पानी पेड़ों को जड़ से उखाड़ कर बहाते हुए पुल के ऊपर आ चुका था ।नदी ने विकराल रूप धारण किया हुआ था, वहां के स्थानीय लोगों ने हमें चेतावनी दी आप नदी पार करने का जोखिम न उठाएं साहब यहां बहुत खतरा है, एक ग्रामीण महिला ने कहा कि पिछली बार यहां एक पूरी बस बह गई थी और उसमें कई जाने भी चली गई थी बस मेरी तो डर के मारे घिग्घी बंध गई,

बहुत सारे स्थानीय ग्रामीण महिलाओं और पुरुषों ने हमें घेर लिया था और निवेदन किया कि हम खतरा मोल न लें, अब हमें प्रतीक्षा करने के अलावा कोई दूसरा विकल्प नजर नहीं आ रहा था। तेज बारिश और हवा से मौसम खराब होता जा रहा था, वापस लौटना भी संभव नहीं था, स्थानीय लोगों ने हमें बड़े आदर प्रेम से बिठाया, गांव के बच्चों के साथ हमने तस्वीरें भी खिंचवाई उनका आतिथ्य भाव और निश्छल व्यवहार देखकर मैं गदगद थी, उनका परदेसियों के प्रति उमड़ता प्रेम अभिभूत करने वाला था। मैंने गाड़ी में रखे चॉकलेट, बिस्किट और चिप्स के पैकेट उन ग्रामीण बच्चों को बांटे और उन से ढेर सारी बातें की जल्दी ही हम उनके साथ घुल मिल गए।

वहां के लोगों का रहन-सहन बहुत साधारण था। अल्प सुविधाओं में जीवन गुजारते हुए भी वे अपनी दुनिया में बहुत खुश थे। उनकी उन्मुक्त हंसी, ठिठोली, स्वच्छंदता में एक असीम सुख शांति और संतोष का भाव था। उन्हें देखकर मेरे मन मस्तिष्क में अजीब सी हलचल हो रही थी ... जहां हम अति सुख-सुविधाओं में पले बड़े होकर भी अवसाद ग्रस्त व कुंठित हैं वहीं वे सीधे-साधे लोग इतनी गरीबी में जीवन गुजारते हुए भी कितने प्रसन्न हैं, प्रसन्नता और खुशी सुख-सुविधाओं की मोहताज नहीं होती है। यही सच है। अभी भी निरंतर बारिश हो रही थी, आगे जाने में खतरा था तो वापस लौटना भी संभव नहीं था, उन भोले भाले ग्रामीणों ने हमें अपने यहां रुकने के लिए कहा विपरीत परिस्थितियों को देखते हुए हम रुकने के लिए सहर्ष तैयार हो गए, रात्रि में किसी अनजान जगह और अनजान व्यक्तियों के बीच रुकना हमारे लिए नया अनुभव था। शमीम ने हमें भरोसा दिलाया ये लोग बहुत नेकदिल इंसान हैं , कोई परेशानी नहीं होगी, अब हम आश्वस्त थे।

ग्रामीणों ने बताया गांव में बिजली तो है लेकिन जबरदस्त कटौती के चलते कुछ ही घंटे बिजली आती है। प्रकाश की व्यवस्था नहीं थी वहां आज भी ग्रामीण ढिबरी वाले लैंप इस्तेमाल करते थे, पारंपरिक वेश भूषा में सजी राजस्थानी महिलाओं ने मुझे घेर लिया वह आपस में हंस हंस कर बातें कर रही थी और मैं उनकी भाषा और भाव भंगिमाओं को सब समझ रही थी, लेकिन विस्तार से उनकी बातें समझ से परे थीं। वह हम परदेसी लोगों के लिए कोई खास मनोरंजक कार्यक्रम के आयोजन के विषय में बातें कर रही थीं। नीम के पेड़ों से घिरे कच्चे आंगन को पार करके एक पक्की पत्थरों की चिनाई वाला बरामदा था जिसे वह उसारा कह रहे थे, उसमें हमारे आराम करने और सोने का इंतजाम किया गया था, कुछ ही देर में भोजन आ गया पीली तड़के वाली दाल, देशी घी की महक वाली बाटी, जीरा आलू और गट्टे की सब्जी, लहसुन मिली खट्टी चटनी दही और अंत में मीठा चूरमा .... बहुत स्वादिष्ट खाना था, आत्मा तक तृप्त हो गई थीं, उन ग्रामीणों का ऐसा आतिथ्य सत्कार देखकर मैं आश्चर्य चकित थी।
बस वहां गाने बजाने का कार्यक्रम शुरू होने वाला था।

प्रगीत कुंअर
सिडनी- ऑस्ट्रेलिया

"वो मैं नहीं था बेटा"

संस्मरण

पुत्र से मित्र

पिछले कई दशकों से पापाजी मुझसे या मेरे सामने अपने परिचितों से मेरे लिए यही वाक्य दोहराते थे "अब तुम पुत्र से मित्र हो गए हो मेरे।" ऐसा मैंने स्वयं भी महसूस किया था कि उम्र के एक पड़ाव पर आकर हम अपने बड़ों की उन बातों को सकारात्मक नज़रिए से देखने लगते हैं जो कल तक हमें सही नहीं लगती थीं और इसके विपरीत बड़े भी हमारी कुछ बातों को अब सही से समझने लगते हैं।

1990 के दशक में ग़ाज़ियाबाद के चिरंजीव विहार में असंल्स बिल्डिंग ने टाउनशिप निर्माण करने की योजना घोषित की, जिसमें हमने भी सिंगल स्टोरी दो कमरों का फ़्लैट देखा जो मेरे नाम से बुक किया। आज चिरंजीव विहार बहुत विकसित हो चुका है और मशहूर शायर श्री गोविंद गुलशन भी वहीं निवास करते हैं जो वहाँ पिछली गली में हमारे बिलकुल पड़ोसी थे। उस समय मैं सीए कर रहा था। वेतन के नाम पर stipend ही था। स्वाभाविक है पापाजी और मैं मिलकर उसकी किश्तें दे रहे थे। मेरा सीए पूरा होने पर मोदी ग्रुप में मेरी नियुक्ति होते ही सब आसान हो गया और मेरी सैलरी से ही फ़्लैट की किश्तें जाने लगी। वैसे भी तब ये बातें मायने नहीं रखती थीं कि पिता और संतान का धन अलग है क्योंकि पूरा परिवार एक इकाई ही होता है।

इसी विषय पर एक पौराणिक कथा भी याद आयी जो मम्मी "धन-तेरस" के दिन पूजा पर सुनाया करती थीं और अब भावना हमारे बच्चों को सुनाती हैं। जिसमें एक व्यापारी अपनी पत्नी और बच्चों को छोड़कर जब व्यापार के लिए यात्रा पर निकला तो उसके पीछे उसका पूरा शहर जलमग्न हो गया। उसने पत्नी और बच्चों को बहुत ढूँढा पर निराश होकर उसे ये मानना पड़ा कि अब उसका परिवार जीवित नहीं रहा। निराश व्यापारी ने खुद को व्यस्तताओं में झोंक दिया और जो भी वो कमाता उसे ज़रूरतमंद लोगों में अपने परिवार की याद में बाँट देता।

एक बार जब व्यापारी अपने पानी का जहाज़ लेकर किसी नगर में गया तो सामान से भरे जहाज़ को किनारे पर लाने से पहले ही जहाज़ डूबने लगा। व्यापारी को उस शहर के पंडित ने बताया कि यदि अबोध बच्चों के हाथ से पूजा कराकर इस जहाज़ को बच्चों के हाथ से छूने से जहाज़ नहीं डूबेगा। व्यापारी ने पंडित जी का कहा मानकर ऐसा ही किया और साथ ये भी घोषित किया कि वो उन बच्चों को जहाज़ में रखा आधा धन उपहार स्वरूप देगा। जब बच्चों को उसने धन बाँटने के लिए धन की ढेरी को बीच से आधा-आधा करना चाहा तो वो फिर आपस में मिल गया। ये देख पंडित जी ने कहा कि निश्चित ही इन बच्चों से आपका कोई निकट संबंध है तभी आप धन का हिस्सा नहीं कर पा रहे हैं। बच्चों की माँ को बुलाया गया तो व्यापारी आश्चर्य में था कि उसे अपना खोया परिवार मिल गया। इस कहानी का सार यही था कि एक परिवार में कुछ अलग नहीं होता है।

वापस उसी प्रसंग से आपको जोड़ता हूँ। चिरंजीव विहार के घर का कब्जा मिलने पर पापा ने मुझे और मेरे बाल मित्र शरद भटनागर को ये आदेश दिया था कि उस घर को वहाँ से गुज़रते हुए समय-समय पर देखते रहना। क्योंकि पापाजी घर को किराए पर देने से हमेशा बचते थे इसलिए वो घर हमारे पास ही रहा जिसकी हम समय -समय पर सफ़ाई आदि कराते रहते थे। पापाजी के कहने पर हमने अपनी सीए फर्म "शरद प्रगीत एण्ड कम्पनी" का बोर्ड भी वहाँ लगा दिया था ताकि हम वहाँ ऑफिस की ब्रांच दिखा सकें। लेकिन तब वहाँ बिलकुल बसावट नहीं थी।

उन्हीं दिनों भावना का हमारे परिवार से पीएचडी के कारण जुड़ाव हुआ। भावना को मम्मी-पापाजी द्वारा बहुत पसंद भी किया जाता था। आगे समय के साथ एक वक्त वो भी आया जब भावना मेरी अच्छी मित्र बन गयीं और मैंने भावना से ही विवाह करने की इच्छा परिवार के समक्ष रखी। पर स्वाभाविक था कि परिवार में उसका विरोध होना ही था। क्योंकि एक तो अन्तर्जातीय प्रेम विवाह ऊपर से भावना का डिवोसी होना और साथ में बिटिया का होना। इसके कुछ समय पश्चात मुझे कहा गया आदेश कि चिरंजीव विहार का घर मैं पापाजी के नाम कर दूँ। मैंने तुरंत बिना देरी किए पेपर पर साइन कर भी दिए क्योंकि मुझे और भावना को धन-सम्पत्ति से कोई मोह ही नहीं था और उस तीस वर्ष की परिपक्व आयु और शिक्षा के कारण हम दोनों स्वयं ही अपनी ज़रूरतें पूरी करने के लिए समर्थ थे। उसके कुछ समय बाद ही चिरंजीव विहार के घर को बेच भी दिया गया। अनेक प्रयासों के बाद भी जब हम परिवार को मना नहीं पा रहे थे तो कोर्ट मैरिज ही एक रास्ता था हमारे सामने। उसके कुछ समय बाद हमने पापाजी को जब इस बात से अवगत कराया तो उन्होंने तुरंत सहज होकर इस सत्य को स्वीकारते हुए कहा कि चलो अब आगे का सोचते हैं। पापाजी रिश्तों को बहुत महत्व देते थे और परिपक्व विचार रखते थे। उन्होंने कहा, "माना कि तुमने कोई असामान्य क़दम नहीं उठाया है और मैंने दुनिया देखी है, बल्कि मेरे कवि मित्रों में भी ये उदाहरण हैं पर परिवार को समझाने में मुझे थोड़ा समय लगेगा। लेकिन मेरा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ रहेगा क्योंकि जीवनसाथी चुनने का अधिकार हर व्यक्ति को होता है।" साथ ही उन्हें इस बात पर भी गर्व था कि उनके बाद परिवार में भावना ही दूसरी थीं जो पीएचडी थीं और साहित्य रचना संसार में अपनी अनेकों पुस्तकें प्रकाशित होने के कारण एक अलग जगह बनाए हुए हैं।

धीरे-धीरे सब सामान्य होने पर पापाजी और मैं अब तक उन दिनों की बातें याद करके हँसते थे। वो कहते थे कि अब जब तुम पुत्र से मेरे मित्र हो चुके हो तो तुम्हें कभी ये लगता तो होगा कि तुम्हारे पिता का रोल उस समय सही नहीं था। मैं उन्हें तुरंत यही कहता था कि हर सिक्के के दो पहलू होते हैं और मैं जब खुद को आपकी जगह रखकर सोचता हूँ तो मैं समझ सकता हूँ कि आपका रोल अपनी जगह सही था। तभी वो ज़ोर से हँसकर बीच में कहते कि और मैं भी जब खुद को तुम्हारी जगह रखता हूँ तो मानता हूँ कि तुम्हारा रोल भी तुम्हारी जगह सही था और फिर हम दोनों ही हँसने लगते थे। वो कहते थे कि अब इतने वर्षों बाद मुझे इस बात पर गर्व है कि मुझे भावना जैसी पुत्रवधू मिली जिसमें वो सभी गुण हैं जो हम तुम्हारी पत्नी में देखना चाहते। वो कहते, "ये भावना का मेरे प्रति आदर ही है जिसने इंटरनेट युग आते ही 90 के दशक में ही मुझे सम्मान देते हुए मेरे नाम का ब्लॉग बनाया और हिन्दी

टाइप की मेहनत कर मेरी इतनी सारी रचनाएँ नैट पर मेरे पाठकों को उपलब्ध करायीं।" अब जब भावना की अनेकों पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं तो पापाजी हर इंटरव्यू में इस बात का विशेष रूप से उल्लेख करते थे। भावना की पीएचडी रिसर्च में अस्सी प्रतिशत से अधिक पापाजी की ही ग़ज़लों का उल्लेख किया गया है। इस बात को भी वो हमेशा उल्लेखित करते थे। पापाजी ने ही भावना की थीसिस को अयन प्रकाशन से प्रकाशित भी करवाया। भाई अर्जुन शिशौदिया इस बात का विशेष उल्लेख करते हैं कि पापाजी ने भावना की ये पुस्तक बहुत गर्व से अपने साइन करके उनको भेंट भी की थी और अन्य अनेक कवियों को भी वो ये पुस्तक भेंट किया करते थे।

पापा, मैं और भावना

पापाजी अक्सर मुझसे कहा करते, "प्रगीत! तुम्हें लगता तो होगा कि तुम्हारे पिता को सम्पत्ति का लोभ है इसीलिए तुमसे तुम्हारे चिरंजीव विहार के घर को मेरे नाम कराया गया और बाद में उस घर को बेचना भी पड़ा। किन्तु मैं तुमको ये बताना चाहता हूँ कि वो मैं नहीं था बेटा।" साथ ही पापाजी ने कहा, "मैं तुम्हें ये बताना चाहता हूँ कि वो कौन थे जिनके कहने पर ये सब हुआ।" मैंने तुरंत पापाजी को वहीं रोकते हुए कहा, "मैं आपका पुत्र हूँ और अब तो आपके अनुसार मित्र भी तो बिना कहे ये बात पहले से ही जानता हूँ कि वो आप नहीं थे और आपके बिना कहे ये भी जानता हूँ कि वो कौन हो सकते हैं ।इसके अलावा सबसे बड़ी बात ये है कि आप और हम अलग नहीं तो वो घर केवल मेरा कैसे हुआ?" इससे आगे मैं इस बात को बढ़ने ही नहीं देता था। ऐसा होने पर पापाजी के चेहरे पर एक संतुष्ट मुस्कान बिखरती थी और मुझे उनकी आँखे हज़ारों आशीर्वाद दे रही होती थीं। वो भावना और मेरी हर उपलब्धि पर सबसे पहले जानने वाले व्यक्ति होते थे और सबसे अधिक आशीर्वाद दिया करते थे। कभी-कभी वो यहाँ तक भी कहते थे कि इस उपलब्धि को किसी और से शेयर मत करना वरना नज़र लग जाती है। ये उनका हमारे प्रति स्नेह ही था। आज भी उनकी वहीं सारी बातें याद आती हैं और हमें स्वावलंबी होने का बल देती हैं।

***

आशा शैली
नैनीताल-उत्तराखंड, मो. 7055336168

कैसा मधुर संगीत था वह

संस्मरण

13 जुलाई 1999, पुरानी डायरी का एक पृष्ठ सामने आ गया है, हालांकि मेरे पास डायरी लिखने के लिए विशेष कुछ नहीं होता, वही घिसे-पिटे अनुभव। पर सबके अनुभव एक जैसे भी नहीं होते। जैसे वर्षा का असर सब जगह एक जैसा नहीं होता। डायरी के अनुसार 'पिंडलियाँ मारे दर्द के कुलबुला रही हैं। आज मैं और नागेन्द्र श्राईकोटी माँ के दर्शन को चले गये थे। इस मन्दिर की चढ़ाई हमारे घर से इतनी ही है जितनी वैष्णो देवी की चढ़ाई। जंगल में हम रास्ता भटक गये। लगभग पाँच किलोमीटर का चक्कर पड़ गया। पूरे छः घण्टे लगे मन्दिर पहुँचने में। लेकिन वह जंगल क्या कभी भूल पाऊँगी?'

हिमानी चोटियों की यात्रा जहाँ आनन्द से भर देती है, वहीं थकान भी देती है। हमारे गाँव गौरा से काफी दूर पैदल चलकर एक ऊँचे शिखर तक जाना होता था। वहाँ पर एक अति प्राचीन देवी का मन्दिर है। अब मुझे यह पता तो नहीं कि यह किस पुराण की कथा है, वैसे थोड़ी-बहुत तो रामचरित मानस में भी है, पर मेरी इस यात्रा से इस कथा का सम्बन्ध तो है ही न। तो शुरू कथा से ही किया जाय ताकि प्रवाह बना रहे।

हुआ यूँ कि जब नारद जी ने वानर रूप मिलने पर क्रोधित होकर भगवान विष्णु को श्राप तो दे दिया परन्तु क्रोध शांत होने पर वे बहुत पश्चात्ताप करने लगे और अपने हृदय में ग्लानि का अनुभव भी करने लगे। तब दया करते हुए माता लक्ष्मी ने उन्हें कोई मंत्र दिया और ग्यारह करोड़ जप करने को कहा। अब नारद जी के सामने एक और बड़ी मुसीबत खड़ी हो गई। वे तो अढ़ाई घड़ी से अधिक कहीं भी न रुकने के श्राप से श्रापित थे। इतना जप कैसे करते? तब माता लक्ष्मी ने उनको इस गिरि श्रृंग पर जप करने को कहा और उन्हें कहा कि यहाँ जप करने से उन्हें जप का करोड़ गुना फल मिलेगा। नारद जी ने माँ के दिखाए मार्ग का अनुसरण किया। तब से इस श्रृंग का नाम श्रीकोटि हो गया, किन्तु अपभ्रंश और उच्चारण दोष के कारण लोक में इसे श्राई कोटी कहा जाता है। हम लोग अक्सर ही वहाँ जाते रहते थे। हमारे घर से सुबह पाँच बजे निकलकर तीन-चार बजे संध्या तक आराम से वापस लौटा जा सकता है। संकरी पगडंडियाँ जंगलों के बीचोंबीच से गुजरती थीं तो ज्यादा गर्मी का अहसास नहीं होता था। आसपास रहने वाले मित्र वर्ग के साथ गाते बजाते हम लोग ऊँचाई पर बने इस मन्दिर को मन्त्र मुग्ध देखा करते थे।

इस बार मेरा मुँह बोला साहित्यक शिष्य, नागेंद्र शर्मा उस शाम कोई लेख लेकर आया था। उसका लेखन पर्यटन आधारित होता। वह घुमक्कड़ भी था ही। रात के भोजन के बाद कहने लगा,

"बुआ, सुबह श्राई कोटी चलें?"

"कोई हर्ज नहीं पर सोच लो बहुत जल्दी उठना होगा।"

"उसकी तो चिन्ता मत करो, पर आपको तो रास्ता पता होगा न, कई बार गये हो।"

"हाँ गई तो हूँ, पर मैं रास्ते भूल जाती हूँ।" मैं थोड़ा सोच में पड़ गई तो नागेंद्र ने बात लपक ली।

"कोई बात नहीं, कोई न कोई गाँव तो रास्ते में पड़ता ही होगा?"

"हाँ वो तो है। पर तुम्हारा लेख भी तो देखना है।" मैंने कहा तो उसने बड़ी लापरवाही से कहा, "देख लेना, कोई जल्दी नहीं। मैं अभी तक श्राई कोटी नहीं गया।"

"ठीक है फिर, अभी तो चलो सो जाओ। सुबह नहाने के लिए पानी भी गर्म करना होगा।"

सुबह मैं बहुत जल्दी उठ गई, पानी गर्म करने के लिए लकड़ी ही जलानी थी। अब तक गाँव में गैस नहीं थी। खाना चूल्हे पर ही बनता था। हम दोनों नहाकर बिना चाय पिये घर से निकल आए। चाय थर्मस में ले ली थी। अभी उजाले का दूर तक पता नहीं था। पंद्रह मिनट बाद हम लोग जंगल के रास्ते पर थे। सावधानी के लिए टार्च ले ली थी क्योंकि अभी उजाला होने में देर थी। सोचा था ठंडे ठंडे चढ़ाई चढ़कर काफ़ी रास्ता तय कर लेंगे। कापटी गाँव तक रास्ता समझ में आ रहा था। जानवरों ने इन्द्र जाल जैसे रास्ते अवश्य बनाए थे, फिर भी मुख्य रास्ता पकड़ में था। अब तक दूर क्षितिज पर हल्की सी उजास दिखने लगी थी, फिर

भी घने पेड़ों के कारण हमें टार्च जलानी पड़ रही थी।

गाँव के किनारे किनारे चलते हमें इक्का दुक्का ग्रामीण मिले जिनसे हमने आगे के रास्ते की जनकारी ली और आगे बढ़ गए। अभी पक्षियों ने बोलना आरम्भ नहीं किया था, हमारे पैरों तले रौंदे जाते पत्तों की चरमराहट को भी ओस का ग्रहण लगा हुआ था। चाय का थर्मस और टार्च नागेंद्र के ही हाथ में थे और हम दोनों की चौकन्नी नज़रें रास्ते पर। वैसे तो इन जंगलों में भालू काफ़ी थे पर उजाला होने लगा था और इक्का दुक्का पक्षी चहचहाने लगे तो पास ही बहते झरने को देखकर नागेन्द्र कहने लगा, "बुआ चाय पी लेते हैं, थोड़ा सुस्ताना भी हो जाएगा और कुछ फोटो ले लेते हैं।"
"हाँ, ठीक है, पर फोटो साफ नहीं आयेंगे अभी अंधेरा है।" कहकर मैं गीली घास पर बैठ गई। नागेंद्र ने थर्मस से दो कप में चाय उंडेली और कप मेरी ओर बढ़ा दिया। यहाँ बारहों महीने सर्दी रहने के कारण हमारे पास बड़े थर्मस रहते थे। कैमरे हमारे पास बढ़िया थे क्योंकि नागेंद्र हमेशा ट्रैकिंग पर जाता था। नागेन्द्र का कंठस्वर भी अच्छा था और सुबह की शीतल मंद बयार मस्ती से भर रही थी। उसने गाना शुरू कर दिया,

"उजी पहाड़ा रा बासा हो देविए
कोटि शराइए भगबतिए। (हे श्राई कोटि की भगवती,
तुम्हारा निवास तो पहाड़ के ऊपर है।)"

वह काफ़ी देर तक गाता रहा। फिर हम उठकर आगे बढ़े पर मुझे जल्दी ही समझ में आ गया कि हम दोनों रास्ता भूल चुके थे। अब हम जिस रास्ते पर चल रहे थे वह एकदम घना जंगल था, जिसके घने पेड़ों ने उजाले को भीतर आने की अनुमति ही नहीं दी थी। बस गाय-बैलों के बनाये रास्ते से अधिक कुछ नहीं था वह भी चीड़ की सूखी पत्तियों से ढके हुए। कोई कायदे का रास्ता नहीं, लगभग एक घण्टा तक हम दोनों घने बांज और बुरुंश के जंगलों में मुख्य मार्ग की तलाश में भटकते रहे पर निराशा ही हाथ लगी। इस तरफ कोई इंसान नज़र नहीं आ रहा था तो मैं थक कर एक पत्थर पर बैठ गई। बस जंगल, जंगल और घने जंगल। दूर तक फैली हरियाली और पक्षियों का मधुर कलरव। तभी मेरे कानों से पंछियों के उस सुखद कलरव की ध्वनि टकराई जिसकी स्मृति कभी भी दिल से नहीं गई। जाने कौन-से पक्षी थे। वह ध्वनि कभी न तो पहले सुनी और न कभी उसके बाद। न कभी पहले ऐसा संगीत सुना और न फिर कभी सुनने की आशा ही है फिर भी मन करता है कि एक बार फिर उन्हीं जंगलों में भटक जाऊँ। एक पक्षी जंगल के इस कोने से उईईईई की लम्बी सीटी मारता तो दूसरा जंगल के दूसरे कोने से उसी स्वर में उत्तर दे रहा था। कहीं झींगुर बोल रहे थे तो कहीं फुर्र से कोई पक्षी सिर के ऊपर से उड़ जाता।
"अब क्या होगा बुआ?" नागेन्द्र थोड़ा घबरा गया था।
"देखते हैं, जिसके दरबार के लिए चले थे, वह करेगी कुछ न कुछ तो।" मन ही मन भगवती से प्रार्थना की ' माँ! इस जंगल से बाहर निकाल।' हम भटककर उस घने जंगल में चले गए थे जहाँ कोई शायद ही कभी गया हो। हम दोनों मंत्र मुग्ध से वहीं बैठ गये। जो होगा देखा जाएगा के अंदाज में। फिर पेड़ों की फुनगियों पर शायद सूर्य रश्मियां पड़ने लगी थीं। पक्षी चुप हो गये थे। हम फिर उठकर रास्ता खोजने लगे। तभी मेरी नज़र सामने की छोटी टेकरी पर गई। वहाँ छोटे कद की एक काली गाय चर रही थी। मैं खुशी से उछल पड़ी, "नागेन्द्र, वह देखो गाय। कोई न कोई तो इसके साथ होगा।"
"हाँ बुआ। उधर ही चलते हैं।" और हम दोनों गाय की तरफ चल दिये, पर हमारे आश्चर्य का ठिकाना न था। दूर दूर तक न कोई दूसरा जानवर और न कोई चरवाहा। परन्तु हम गाय के पीछे चल रहे थे और हमारे सामने ऐसे अद्भुत दृश्य आ रहे थे कि आज तक आँखों से ओझल नहीं हुए।
"बुआ, यह गाय हमें कहाँ ले जाएगी?" नागेन्द्र मसखरी पर उतर आया था।
"जहाँ भी ले जाए, इंसान तो होंगे ही। बाकी बाद में देख लेंगे।" मैंने कहा, तभी वह काली गाय ऊँचे पहाड़ का मोड़ घूमी और उसके पीछे-पीछे चलते हुए हम भी उधर ही घूम गये। पर आठवाँ आश्चर्य हमारे सामने था। भटकते हुए मन्दिर वाली पहाड़ी का शिखर जो दूर से देखा तो आँखें झपकना ही भूल गईं। एकदम शैल शिखर। इस शैली में बने मन्दिर तो देखे हैं परन्तु यह प्रकृति निर्मित मन्दिर वह भी शिखर शैली में? आश्चर्य। अब हम श्राई कोटी माता के प्रांगण में खड़े थे। वहाँ पुजारी एवं अन्य श्रद्धालु जन पूजा की तैयारियों में मग्न थे। पुजारी हमें देखकर हैरान थे। गाय अब वहाँ नहीं थी। हमने पुजारी जी को जब सारी बात बताई तो वे भी कहने लगे कि "मैं तुम लोगों को उधर से आते देखकर इसीलिए हैरान था कि उस तरफ तो कोई रास्ता ही नहीं। तीखा ढांक है, तनिक सा पैर फिसलता तो किसी को पता भी नहीं चलता तुम लोगों का। कोई गाँव नहीं। तुम लोग इधर से आए कैसे?" पर अब तो हम माँ के दरबार में थे।

कई पत्रिकाएँ चीख चीखकर हिन्दु धर्म के विश्वासों और आस्थाओं पर प्रहार करती हैं और उन्हें विखण्डित करने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगा देती हैं, लेकिन जो आँखें देख रही थीं उसका क्या करें।

***

सुधा गोयल
बुलंदशहर-उत्तर प्रदेश, मो. 9917869962

जूता शास्त्र

व्यंग्य लेख

पता नहीं लोग कहां से टूटे फटे पुराने जूते उठा लाते हैं और मंचों पर फेंकने लगते हैं। कुछ को जूते लग भी जाते हैं तो कुछ माइक स्टैंड का सहारा लेकर बच भी जाते हैं। जोश में कुछ लोग अपने नए जूते भी उछाल देते हैं ।मैं भी बचपन में कई बार इमली और अमिया तोड़ने के लिए पत्थर की जगह चप्पल उछाल देती थी। पर जब भी चप्पल पेड़ की फुनगी पर अटक गई और लाख कोशिशें के बाद भी नीचे नहीं गिरी तो चप्पल उछालना छोड़ दिया क्योंकि चप्पलों का उछालना कई बार बड़ा महंगा पड़ा।

लोग चप्पल जूते की जगह सड़े टमाटर और सड़े अंडे उछालते हैं जो सामने वाले को घायल कम रंगीन अधिक कर देते हैं। महंगाई का जमाना है पुराने जूते काम आ सकते हैं पर सड़े टमाटर फेंकने के अलावा और किसी काम के नहीं रहते। अब इन्हें कहां फेंका जाए यह आपकी जरूरत पर निर्भर करता है।

सड़कों पर जूते चलना आम बात है। सड़कों पर ना चलेंगे तो और कहां चलेंगे? हां जूते स्वयं नहीं चलते चलाए जाते हैं। चाहे हाथ से चलाएं जाएं या फिर पांव से पर चलेंगे जरूर। पहले जब जूते का चलन नहीं था तब जूते से संबंधित मुहावरे भी नहीं बने थे। एक स्पेशल अस्त्र-शस्त्र से ही लोग अछूते थे। लड़ाई के लिए बेशक हाथ में कुछ हो या ना हो पर पैरों में जूते हों तो काम चल जाता है। पैरों से निकाला और चालू। चलाने के लिए किसी बटन को दबाने की आवश्यकता नहीं। एक जूता चलता है तो सैकड़ों चलने को बेताब हो जाते हैं।

किसी दिलजले ने औरत को पांव की जूती बता दिया पर यह भूल गया कि जब पैर की जूती सिर पर पड़ती है तो क्या हश्र होता है। लोग अपना उल्लू सीधा करने के लिए चांदी का जूता भी चलाते हैं जिसकी मार बड़ी मीठी और सुखदाई होती है। यह तो भुक्त भोगी ही समझ सकता है। वैसे भी आजकल चांदी के दाम आसमान छू रहे हैं।

एक बार मैं जूते खरीदने एक दुकान पर गई। छूटते ही दुकानदार ने पूछा-"बहन जी कौन से दिखाऊं पहनने वाले या खाने वाले"? पहले मैं जरा चौकी फिर उत्सुकता जागी तो बोली और क्या-क्या क्वालिटी है? कोई लेटेस्ट ट्रेंड? मुझे भी आनंद आने लगा था।

दुकानदार बोला-"देखिए मैडम जूता खाने की नहीं खिलाने की चीज है। जूता ऐसा शस्त्र है जिसका अपना शास्त्र है"- और फिर वह अलग-अलग ब्रांड के जूते निकाल कर दिखाने लगा।

"देखिए मैडम यह एक नया ब्रांड है। इज्जत उतार जूता। टारगेट को हिट करके वापस आने की पूरी गारंटी है। आजकल इसकी बहुत डिमांड है। यह दूसरा देखिए, जूता नहीं मिसाइल है बेशर्मों की धज्जियां उड़ा दे, उन्हें धो कर रख दे।"

मुझे सोच में डूबा देकर दुकानदार बोला-"मैडम जूते किसके लिए लेंगी? आप अपने लिए या साहब के लिए? मैंने चौंक कर दुकानदार की ओर देखा। उसकी आंखों की चमक बता रही थी कि जूते की खरीदारी में ही समझदारी है। वह चाहे साहब के सिर की सवारी करें या मैडम के पैरों की।

जूतों का ऐसा शास्त्र मेरे सामने पहले नहीं आया था। तभी कुछ सिरफिरे जूता लेकर मंत्रियों पर दौड़ पड़ते हैं। जूता और जूते वाला दोनों रातों-रात प्रसिद्धी पाकर अंतरराष्ट्रीय ख्याति वाले बन जाते हैं। संसद में जूते का चलन मीडिया वाले खूब दिखते हैं।

जूते की तीन बहने-जूतियां,चप्पल और सैंडल हैं जो अक्सर जूते की मर्दानगी के साथ-साथ स्वयं भी दो-चार हाथ आजमा लेती हैं। वैसे ज्यादातर सैंडल चप्पल और जूतियां ही शोकेस में सजी-धजी मुस्कुराती ललचाती रहती हैं। किशोरियों उनकी मजबूती पर कम खूबसूरती पर अधिक ध्यान देती हैं। इसलिए हाथ में कम लेती हैं। जैसे नई-नई जूतियां ज्यादा चरमराती हैं वैसे ही चप्पलें भी जल्दी उखड़ जाती हैं। खैर यह तो पहनने पहनाने या खरीदने वाले जानें पर मैं तो कहूंगी कि बाप के पैर का जूता बेटे के पैर में आकर गायब होने लगा है। इसका दुनिया में शोर मचा है।

बस आज जूते की बात इतनी ही क्योंकि पतिदेव के हाथों में जूते का डिब्बा मुझे दीखने लगा है अभी-अभी बाजार से लौटे हैं। पता नहीं ऊंट किस करवट बैठे?

***

बी एल आच्छा
पेरंबूर, चेन्नई (तमिलनाडु) मो-9425083335

मैं पसंद हूं किसी और की मुझे हांकता कोई और है

व्यंग्य लेख

लिफ्ट में मिस्टर के साथ उतरते हुए मैडम ने अपने डॉगी को भी साथ ले लिया। मैडम ने डॉगी को कमांड दिया-नो, नो, 'स्टे दिस साइड।' डॉगी नहीं खिसका, तो मिस्टर ने कहा - जैकी, इधर-इधर...।" मैडम की भौंहें थोड़ी तन गयीं। लिफ्ट में एक और मैडम ने कहा- "यूअर जैकी डजन्ट अंडरस्टैंड इंग्लिश?" चेहरा थोड़ा कसमसा गया। लगा कि सभ्यता के पायदान पर नीचे आ गये हैं।

घर पहुंचकर सास- ससुर से कहा- "आप लोग डॉगी को ठीक से कमांड नहीं देते। हमेशा कहते हैं- "जैकी! इधर आओ, इधर जाओ, सोफे पर नहीं बैठो। थोड़ा सा सिखाइए। यह लर्निंग स्टेज है। अभी सीख गया तो मल्टी की सभ्यता में नीचे नहीं देखना पड़ेगा।" सास-ससुर तो हिन्दुस्तानी जबान में रचे थे। पर तभी डॉगी दादा-दादी के पास चला गया। बच्चे की तरह दुलारने लगी दादी। बोली का स्नेह पाकर डॉगी उनसे चिपका हुआ था। अब वे अंग्रेजी-हिन्दी तो क्या, उसे गोदी में लिए हुए थीं।

डॉगी इस फ्लैट में लाड़ला है। तीनों पीढ़ियों का अकेला प्रिय किरदार। कभी सोफे पर। कभी गैलरी में। गोचारण की तरह मॉर्निंग-इवनिंग वाक। मल्टी की सभ्यता में बिन अंग्रेजी के सिक्का जमता नहीं है। मगर दादा-दादी, मम्मी-पापा उसे एलकेजी- यूकेजी में बिना इंग्लिश के ट्रेनिंग दे रहे हैं। यों मैडम डॉगी को इंग्लिश मीडियम की ऑर्डर कमान में ले आती हैं। सुबह -शाम श्वान- चारण ..ना.. ना वाक के समय भी इंग्लिश छाई रहती है। वाक के दौरान देसी श्वानों को दुबककर पूंछ चिपकाए डॉगी, अपने मालिक के हाथ में डंडे को देखकर अपने को थाने की तरह सुरक्षित पाता है।

यों अकेला डॉगी और संवाद की तीन पीढ़ियाँ। इसलिए कभी-कभी कन्फ्यूज हो जाता है। बॉडी लैंग्वेज खूब समझता है। सूट-बूट में आए मेहमान को देखकर निगाहों ओर सिहरनों से मुस्कुराता है। कोई ऐसा-वैसा आए तो घूरता- बिदकता है। पर समस्या बॉडी लैंग्वेज की नहीं लैंग्वेज की है।

अब डॉगी की कोई मातृभाषा तो है नहीं। जो है, उसे मोटा-मोटा भांप लेते हैं। वैसे मशीनी नार्को या लाई- टेस्ट भी कितना ताड़ पाते हैं। पर नव-दंपती भी मल्टी सभ्यता में डॉगी को देसी से इंटरनेशनल बनाए बगैर चुप नहीं होते। डॉगी की मुश्किल यह कि दादा-दादी का बोली संवाद सीखे। या मम्मी-पापा की हिन्दुस्तानी जबान में उतर आए। या अंग्रेजी ऑर्डर में सिट, गो देयर, ईट ब्रेड, कम, नो- नो.. से यूकेजी पास करवा दें। तीन पीढ़ियाँ और थ्री लैंग्वेज फार्मूला तो यों भी जाम पड़ा हुआ है। स्नेह के धागे दादा- दादी, मम्मी-पापा की बोली में सिलाई कर देते हैं। पर अंग्रेजी क्रेडिट कार्ड के बिना मल्टी का एक्सचेंज रेट अप नहीं हो पाता। आखिर जैकी भी सुपर क्लास एक्सप्रेशन की कसौटी जो है।

डॉगी अक्सर दादा- दादी, मम्मी- पापा से सटा रहता है। पर नवदंपती डॉगी को यूकेजी में इंग्लिश में ही डांट लगाते रहते हैं। सहमा सा डॉगी दादा-दादी की राह पकड़ ले, तो मैडम -मिस्टर उसे अबाउटर्न करवा देते हैं।

इन दिनों डॉगी को टी. वी. रोग लग गया है। और जब से केबीसी शो देख लिया तो न पलकें झपकती हैं, न लटकी हुई जीभ अंदर जाती है। साफ सुनने के चक्कर मे लंबी सांसें भी नहीं भरता। उसे अचरज होता है। हॉट सीट पर बैठे बच्चे से ठिठोली करते अमिताभ जी जब कहते हैं- कंप्यूटर जी, कंप्यूटर महाशय डी पर ताला लगाइए। तो लगता है कि ये "मालिकाना आर्डर जैसे गुस्सैल नहीं हैं। बच्चा जब हँसते हँसते बतियाता है- "हम जानते हैं कि आप उत्तर बताने से पहले कुछ देर ठिठके क्यों रहते हैं? आप की आंखों में बचपन सी शरारत नजर आती है।" और डॉगी को लगता है कि ये नोनो, स्टैण्ड अप, ईट इट, डॉन्ट सिट जैसे आर्डर उसे कितना छिटका देते हैं। और ये महानायक बच्चे को भी "जी" लगा रहे हैं। और तो और, कभी कंप्यूटर को जी तो कभी महाशय कह रहे हैं।

अगर जमाना थोड़ा और हाई-फाई हो जाए तो लगता है कि लोग अपने-अपने डॉगी जी की पीठ पर मॉर्निंग- इवनिंग वॉक के समय छोटे से बैग में 'टैब' रख देंगे। या फिर यह न होगा तो चिप लगवा देंगे। आखिर मॉल में नयी नस्ल को ब्रांडेड और स्पेशल दिखना ही चाहिए।

पर डॉगी जी टीवी पर आंखें गड़ाए हैं। बच्चे की हाजिरजवाबी देखकर महानायक पूछते हैं- "आपके साथ कौन आए हैं?" बच्चा उत्तर देता है-"मेरे माता-पिता।" पूछते हैं- "कहाँ हैं ?" और तालियों की गड़गड़ाहट के साथ ये केबीसी के "जी वाले" महानायक हिन्दुस्तानी का बाजार खड़ा कर देते हैं। डॉगी को लगता है कि इसी बोली से स्वाद और स्नेह के गोंद से चिपके संवाद में दादा-दादी के साथ पसर जाए। मगर तभी अंग्रेजी डांट से घबराया डॉगी का 'महाशय जी' तो स्वाहा हो जाता है। गंवई बोली की छुअन और माँ-बाप की आत्मीय हिन्दुस्तानी से निकलकर वह तनी हुई अँग्रेजी मुद्रा में इंग्लिश इंटरनेशनल हो जाता है। अब डॉगी जी महानायक के सामने यह गाना तो गाने से रहे -

"मैं पसंद हूं किसी और की,
मुझे हाँकता कोई और है।"

***

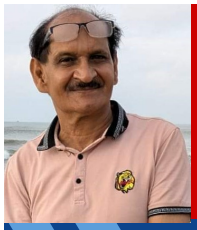

सुभाष चंदर
गाजियाबाद-उत्तर प्रदेश, मो. 9311660057

हमने कार चलाना सीखा

कहानी

हमारा अपने बारे में काफी पुख्ता किस्म का ख्याल है कि हम टेक्निकल मामलों में बहुत ज्यादा एक्सपर्ट टाइप के बन्दे हैं और ऐसे कामों को काफ़ी जल्दी सीख जाते हैं। मसलन बल्ब बदलना सीखने में हमने सिर्फ़ आठ दिन लिये। इस अवधि में हमने केवल तीन बार बिजली के झटके खाये, पाँच बल्ब तोड़े और जमीन पर तो सिर्फ़ दो बार ही गिरे। उसमें भी हमारा सिर्फ़ एक ही दांत टूटा, दूसरा सिर्फ़ हिलकर ही रह गया। ऐसा ही रिकार्ड हमारा ड्राइविंग सीखने का है। हमने साइकिल चलाना बमुश्किल डेढ-दो साल में सीख लिया था। स्कूटर चलाने में जरूर तीन साल और चार स्कूटर लगे थे। चौथे साल में चौथे स्कूटर को कबाड़ी को देने के बाद हमें स्कूटर चलाना भी आ गया। आज हम अपने घर से दफ़्तर बेनागा स्कूटर से जाते हैं। दो किमी की दूरी तय करने में हम बमुश्किल एक घंटा लगाते हैं। पैदल जाने में हमें 40 मिनट लगते हैं। पर हम स्कूटर पर ही चलना पसंद करते हैं क्योंकि सयाने कहते हैं कि अपने वाहन की सवारी का मज़ा ही अलग होता है। इधर कुछ दिनों से हम कार चलाने के बारे में गंभीरता से सोच रहे थे तो इसके पीछे कई कारण थे। पहला ये कि मुन्नू की मम्मी हमको दोनों टाइम याद दिलाती हैं कि उनकी दोनों बहनों के पति अपनी कार चलाते हैं और अपनी पत्नियों यानी हमारी सालियों को घुमाते हैं। उनकी बहनें रोज यहां-वहां घूमने की कहानियां सुनाती हैं और आखिर में ये कहना नहीं भूलती कि जीजाजी कब तक इसे टुटहे स्कूटर पर तुम्हें घुमाते रहेंगे, कार से कब चलेंगे। अपनी कार में चलने का तो मज़ा ही अलग है वगैरहा ...। दूसरा पुख्ता कारण यह था कि हमारे दफ्तर में, हमारे बराबर के सभी अफसरों के पास कार थी, एक हम ही स्कूटर से आते थे। उसके कारण हमारा स्टैडर्ड का पारा उनके मुकाबले डाउन आ रहा था। तीसरा सबसे चुभने वाला कारण यह था कि पड़ोस वाली मिसेज़ शर्मा ने भी कार खरीद ली थी और वह धड़ल्ले से हमारे सामने से कार से गुज़रती थी और हमें स्कूटर की सवारी करते देखकर, हमारी तरफ जैसी मुस्कान वो फेंकती थी, उससे हम जरूरत से ज्यादा घायल हो जाते थे। यह आखिरी कारण काफ़ी भारी पड़ रहा था। सो हम कार खरीदना जल्द से जल्द चलाना सीखना चाहते थे। एक दिन हमने इस सम्बंध में, अपने दोस्त वर्माजी से बात की। सारा दुखड़ा सुनाया। सारे कारण गिनाये। बीवी और साथी अफसरों के तानों वाली बात से तो वह खास प्रभावित नहीं हुए पर मिसेज़ शर्मा की तीखी मुस्कान वाली बात उन्हें भी चुभ गयी। सुन्दर स्त्री, वह भी दूसरे की, किसी भी कारण से मित्र को देखकर मुस्कराये तो मित्र के पेट में दर्द होना स्वाभाविक है। सो उन्होंने अपने दर्द के इलाज के लिए ठोस कदम उठाया और हमें बिन मांगी सलाह दी कि हमें एक पुरानी कार खरीद लेनी चाहिए। हमने पूछा – पुरानी क्यों, नयी क्यों नहीं ? उन्होंने फर्माया – 'पुरानी कार से ही सीख लो। दो-चार जगह ठुक भी गयी तो दर्द कम होगा। डेंट-पेंट भी पुरानी कार का सस्ता पड़ेगा' बात हमारी समझ में आ गयी। हमने बैंक से पैसे निकलवाये और उसी दिन कार बाज़ार से एक बढिया कार खरीद ली। कार वाकई बढ़िया थी क्योंकि पुरानी थी। कार तो खरीद ली पर असली समस्या बाकी थी यानी कार चलाने की ट्रेनिंग। वर्माजी ने यहाँ भी दोस्ती निभाई बोले – 'यार कार चलाना तो बहुत आसान है, समझ लो, स्कूटर से भी आसान। ना बैलेंस बनाने की जरूरत। ना किसी से टकराने पे चोट लगने का डर। डरेगा तो सामने वाला।' हमें दिल ही दिल में तसल्ली हुई। पर अभी असली सवाल सामने था। सो हमने उसे वर्मा जी के हुजूर में पेश किया – 'यार वो सब तो ठीक है पर हमें कार चलाना सिखायेगा कौन?' वर्मा जी बोले – 'हम सिखायेगें और कौन सिखायेगा? हमने पूछना चाहा कितने साल में, फिर याद आया – कार चलाना स्कूटर चलाने से भी आसान है सो जल्दी सीख जायेंगे। सो प्रश्न में संशोधन कर लिया, तो तुम हमें कितने महीनों में कार चलाना सिखा दोगे?' वर्मा जी हो.. हो.. करके हंसे, बोले– 'कितने महीनों में, अरे, सुबह सिखायेंगे, दोपहर तक प्रेक्टीस करना, देखना शाम को मार्केट में कार चलाते हुए दीखोगे।'

हमारी प्रसन्नता का पारावार न रहा। पर दोस्तों के सामने खुशी प्रदर्शित करना, वो भी वर्माजी जैसे मुफ्तखोरों के सामने, कितना नुक्सानदेह साबित हो सकता है, वह हम जानते थे। सो हमने खुशी छिपाई और सीधा सा सवाल

दिखा दिया – 'अच्छा ये बताओ, सिखाने की फीस क्या लोगे ?' वर्माजी हंसे, बोले–'क्या बात करते हो यार, भला तुमसे फीस लूंगा। तुम तो बस अनारकली बार में पार्टी दे देना। वो भी तब जब ठीक से चलाने लगो, अब खुश।' मैंने खुश होने से पहले हिसाब लगाया। अनारकली बार का दो बंदों का खर्चा ज्यादा से ज्यादा 700 रुपये। कार ड्राइविंग स्कूल की फीस 1500 रुपये। नेट 800 रुपये की बचत। इस बचत ने मुझे खुश होने का अवसर दिया। सो मैं खुश हो लिया। पार्टी का वादा कर लिया। इसके बाद वर्माजी ने कार स्टार्ट की और घर तक ले आये। कहना ना होगा कि मैं चुप-चाप वर्माजी के पैरों की हरकतें देखता रहा। वर्मा जी समझ गये कि मैं कार चलाने के फंडे सीख रहा हूँ। ज्यादा सीख गया तो पार्टी मारी जायेगी। इस डर से उन्होंने मिसेज़ शर्मा की बात छेड़ दी। मैं अटक गया और काफ़ी देर तक पहली मुस्कान और मेरे कार चलाने के बाद आने वाली संभावित मुस्कान में भटक गया। इतनी देर में घर आ गया। वर्मा जी कार घर छोड़कर चले गये। वर्माजी गये, श्रीमती जी आ गयीं। श्रीमती जी पहले गाड़ी देखकर खुश हुईं। फिर कुशल मैकेनिक की सी दृष्टि से गाड़ी का नख-शिख परीक्षण करने लगीं, उसके लगभग दस मिनट बाद उन्होंने मुंह बिचकाते हुए घोषणा की–'पक्की बात है, लुट कर आये हो। शोरूम वाले ने नयी बताकर तुम्हें पुरानी गाड़ी भिड़ा दी' उससे पहले कि वह मेरी नासमझी की शान में कसीदे पढ़ती और बात का तोड़ कुछ ऐसी बात पर करतीं, हाय राम, इस नासमझ आदमी से शादी करके मेरे तो भाग्य ही फूट गये वगैरहा। मैंने सारा खेल पहले ही भांपकर उनके इन्सपेक्शन की बात को हल्का कर दिया। बोला – 'देवी जी, यह गाड़ी मैंने पुरानी ही खरीदी है। मुझसे ही पूछ लेतीं तो इतनी देर इंसपेक्शन ना करना पड़ता।' श्रीमती जी को अपनी मेहनत खराब होने का क़ाफ़ी दुःख हुआ। फिर भी वह बोली – 'पर क्यों खरीदी पुरानी कार। मेरी तो नाक कटा दी। अब हम क्या इस खटारा कार से चलेंगे। छाया, सीमा, रीता सब क्या कहेंगी - लो आ गयी पुरानी कार वाली। बेइज्जती कराके रख दी ' वह अभी और टमकोले सुनाने वाली थीं कि हमने उन्हें कारण समझा दिया कि हमने पुरानी कार क्यों खरीदी। हमारे बताये कारण से वह संतुष्ट हो गयी। उसके बाद वह कार की पूजा के लिए हल्दी-रोली लेने चली गयी। हम भी निश्चिंत होकर दोस्तों को खबर सुनाने चले गये।

रात को जब हम लौटे तो श्रीमती जी का मूड बहुत रोमांटिक था। आते ही मुस्कराई, फिर गलबहियां डालकर बोली–"क्यों आर्यपुत्र, आप कितने महीनें में गाड़ी चलाना सीख जाओगे? देखो, इस बार स्कूटर की तरह सालों का प्रोग्राम मत बनाना। जल्दी सीख जाना, मुझे अपनी सारी सहेलियों के घर जाना है अपनी गाड़ी से। समझ रहे हो ना।" मैं समझ गया कि श्रीमती जी मेरी सीखने की क्षमता पर अंगुली उठा रही हैं। सो मैं थोड़ा पिनककर बोला "बेगम, डायलॉग मत मारो। देखना हम कल शाम ही लौंग ड्राइव पर चलेंगे। सीधे दिल्ली के इंडिया गेट।" तैयार रहना। अब चौंकने की बारी श्रीमती जी की थी –"ये क्या कह रहे हो जी, कल... इत्ती जल्दी.... धत्... मज़ाक कर रहे हो ? उनके स्वर में संशय था। मैं बोला–" मेरी बात पर विश्वास करो। वर्माजी बता रहे थे। कार चलाना बहुत आसान है। बस सुबह वर्माजी सिखायेंगे। दोपहर को थोड़ी प्रेक्टीस होगी। शाम तक तो ड्राइविंग में परफेक्ट हो जाऊँगा। बस तुम तैयार रहना। ठीक छह बजे। और हाँ .... डिनर भी बाहर ही करेंगे। मेरे स्वर में विश्वास था।
"ऐं..सच्ची जी..हे राम...फिर तो मज़े आ जायेंगे। सुनो जी... दोपहर को ब्यूटी पार्लर हो आऊँगी। आखिर... अपनी गाड़ी मैं बैठ के जाना है। अब तो कार वाले हो गये है, स्टैंडर्ड तो मैनटेन करना पड़ेगा ना।"" श्रीमती जी के स्वर में उल्लास था और कार मालकिन के लायक ठसक भी।

फिर श्रीमतीजी घर के काम निपटाने लगीं और हम कल्पना में उन सभी दुश्मनों को निपटाने लगे जो हमें स्कूटर पर देखकर तानों की गोलियाँ बरसाया करते थे। सोचते-सोचते ही हमें नींद आ गयी। उस रात सपने में हमने अपने आपको जब भी देखा, कार की ड्राइविंग सीट पर ही देखा। हर बार हम सपने में गाड़ी चला रहे होते थे और हमारी बगल की सीट पर कभी मिसेज़ शर्मा हमें निहार रही होतीं थीं तो कभी दफ्तर की मिस ब्रिगेंजा। अलबत्ता श्रीमतीजी भी किसी सपने में नज़र आई हो, ऐसा हमें याद नहीं आया। वैसे भी नये ड्राइवर के साथ शुरू में तो बीवी ना ही रहे तो बेहतर है, वरना एक्सीडेंट के चांस बढ़ जाते हैं। रात भर में हमारी नींद कई बार उचटी। हर बार अच्छे सपनों को रिवाइंड करते हुए हम सो गये।

सुबह आठ बजे हमारे ड्राइविंग कोच वर्माजी आ धमके। हम तो तैयार थे ही। हमने श्रीमती जी से भी कहा कि वह भी हमारे साथ बैठ लें। कुछ देर हम ड्राइविंग सीखेंगे फिर वर्माजी को विदा करके, उन्हें कार में बिठाकर गुल्लू की चाट खिलाकर लायेंगे। हमने क़ाफ़ी इसरार किया पर श्रीमती जी तैयार नहीं हुई। उन्हें हम पर कुछ ज्यादा विश्वास नहीं था। पर हमारे तीनों बच्चों वीनू, विन्नी और मन्नू को हम पर पक्का भरोसा था कि हम घन्टे-दो घन्टे में

कार चलाना सीख जायेंगे और इसके बाद वे अपनी कार में बैठकर आईसक्रीम खाने जायेंगे। हमने भी उनसे वादा कर लिया। अब गाड़ी चलाना सीखने का टाइम आ गया। वर्माजी ने गाड़ी स्टार्ट की। फिर ड्राइविंग सीट पर बैठकर हमें कोचिंग देने लगे। पैरों की तरफ क्लिच है, बीच में ब्रेक और दांयी तरफ एक्सीलेरेटर है। बांये तरफ गीयर है। पहले क्लिच दबाना है। फिर गाड़ी पहले गियर में डालनी है, तब एक्सेलेरेटर देना है – धीरे-धीरे।

उन्होंने दो-तीन बार ऐसा करके दिखाया। हमसे पूछा कि समझ गये। हमें भी लगा कि यह तो बड़ा आसान है, सब समझ में आ गया। हमने हाँ कर दी। अब उन्होंने हमें ड्राइविंग सीट पर बिठा दिया। हम थोड़ा घबराये, ब्लड प्रेशर थोड़ा बढ़ गया। वर्माजी समझ गये। उन्होंने फिर रिकार्ड बजाया–चिन्ता मत करो। गाड़ी चलाना टू व्हीलर चलाने से आसान है। बस एक्सीलेटर का ध्यान रखना, उसको ज्यादा मत दबाना। स्टेरिंग सभालने में घन्टे भर में परफेक्ट हो जाओगे। हमें भी उनकी बातों पर विश्वास हो आया। हमने गाड़ी बंद करके फिर से स्टार्ट की। फेफड़ों में हवा के साथ कॉन्फीडेंस भरा। उसके बाद आस-पास का जायजा लिया। आसपास यानी कॉलोनी की सड़क पर कोई नहीं था। हमारी गाड़ी थी, हम थे, वर्मा जी थे, बच्चे थे और लगभग आठ-दस फीट की दूरी पर एक खंभा था। अब हमें इत्मिनान हो गया। पहली बात तो हम सब समझ गये थे फिर भी कोई गलती हो जाती तो वर्मा जी थे ही। उनके हाथ हैंडब्रेक पर थे। कुछ भी गलत होने की स्थिति में वह हैंडब्रेक ऊपर खींच देते। गाड़ी रुक जाती। मतलब खतरे की संभावना ना के बराबर थी। हमने वर्मा जी की तरफ़ आँखों आँखों में देखा। वर्मा जी आगे बढ़ने का इशारा किया। साथ ही एक बार फिर समझाया -" एक्सीलेरेटर को बहुत हल्के से दबाने पर ध्यान देना। बाकी सब समझ ही गये हो। अब भगवान का नाम लेकर गाड़ी आगे बढ़ाओ। उन्होंने हिम्मत बढ़ाई फिर बच्चों ने भी नारा लगाया- "पापा गाड़ी बढ़ाओ, हम आपके साथ हैं।" अब हिम्मत आई, फिर भी एक्स्ट्रा हिम्मत के लिए हमने हनुमान चालीसा का मन ही मन जाप भी शुरू कर दिया। कान्फीडेन्स लेवल काफी बढ़ गया। अब हमने गाड़ी बंद करके फिर स्टार्ट की। पहले क्लिच दबाई, गीयर डाला, यहाँ तक सब सही था, पर जैसे ही एक्सीलेरेटर पर पैर रखा। गाड़ी तेज़ी से भाग ली। जाकर सामने खड़े खंम्बे से टकराई। हम घबरा गये। इधर वर्माजी चिल्ला रहे थे। एक्सीलेरेटर से पैर हटाओ- ब्रेक दबाओ। हमें घबराहट में कुछ समझ नहीं आ रहा था। जितना वह चिल्लाते, उतना ही हम जोर से एक्सीलेरेटर दबाते। घबराहट में हम जोर-जोर से चिल्लाने लगे- वर्मा बचाओ, हम मर जायेंगे। ऐसा कहकर हमने घबराकर वर्माजी के हाथ पकड़ लिये। अब वर्मा भी शोर मचाने लगे – अबे छोड़ो, हाथ तो छोड़ो। पर हम होश में हों तो छोड़े। हमने ना उनके हाथ छोड़े ना एक्सीलेरेटर दबाना छोड़ा। हम जितनी ताकत से चिल्ला रहे थे, उतनी जोर से एक्सेलेरेटर दबा रहे थे। खंभे में एक टक्कर लगी – दो- दस – बारह पता नहीं टक्कर पे टक्कर लगती रही। पूरी गाड़ी में चिल्ल-पों मची हुई थी। वर्माजी चिल्ला रहे थे, अबे मेरे हाथ छोड़ो, एक्सीलेरेटर से पैर हटाओ, वरना खंभा गिर जायेगा। हम सब मर जायेंगे। उधर बच्चे चिल्ला रहे थे, रो रहे थे। उधर हम धड़-धड़ बजते दिल से बचाओ-बचाओ चीख रहे थे। पर आँखें बंद करके एक्सेलेरेटर पर जोर लगाये जा रहे थे। कार लगातार खंभे पर टक्कर मार रही थी। खंभा हिल रहा था। उधर वर्माजी अपना हाथ छुड़ाने को जोर लगा रहे थे। साथ-साथ हमें गलिया रहे थे पर हम कार से खंभे को उखाड़ने के काम में लगे थे। तभी जोर की आवाज़ हुई और खंभा उखड़कर कार की छत पर गिरा। कार का शीशा चटख गया। छत पिचक गयी। बच्चे, हम, वर्मा जी और बालकनी में खड़ी श्रीमती जी सभी जोरों से चीखे। इस कोलाहल और खंभे के पतन से फायदा ये हुआ कि हमारे हाथों ने वर्मा के हाथ छोड़ दिये। वर्मा ने जल्दी से हैंड ब्रेक लगाये। गाड़ी रुक गयी। वर्माजी चीखते हुए पहले खुद बाहर निकले, फिर बच्चों को बाहर निकाला, उसके बाद हमसे बाहर निकलने को कहा। पर हमें कुछ सुनाई नहीं दे रहा था, हम तो एक्सीलेरेटर से पिछले जनम की दुश्मनी निकालने पर आमादा थे। हारकर दुबे ने हमें खींचकर बाहर निकाला। बाहर आते ही हम नीचे गिर गये और बेहोश हो गये। कुछ देर बाद मुंह पर पानी के छींटे मारकर हमें होश में लाया गया पर हम गाड़ी की हालत देखकर फिर से बेहोश होते-होते बचे। खंभे ने कार की छत पिचका दी। आगे का शीशा टूट गया था। दरक से पिछला शीशा भी चटख गया। गनीमत थी कि पुरानी गाड़ी थी, सो मजबूत थी। खंभा कार की छत तोड़कर अन्दर नहीं घुसा था, वरना हम सारे हॉस्पीटल में पड़े होते। हमने कांपते स्वर में ऊपर वाले को धन्यवाद दिया। उसके बाद वर्माजी को गलियाया कि उन्होंने समय पर हैंड ब्रेक लिए होते तो इतना नुक्सान न होता। वर्माजी ने हमें बहुत समझाया कि हमने उसके हाथ पकड़ लिये थे, वो हैंड ब्रेक कैसे लगाते। पर बात हमने ना तब मानी, ना आज मानी। बाद में हमने हिसाब लगाया कि उस दिन हमने लगभग पांच मिनट गाड़ी चलाई थी और आठ-दस फीट का सफर तय किया था। मन्नू ने बाकी हिसाब लगाकर बताया कि इस "लम्बे" सफर में हमने खंभे

में पूरे 24 बार टक्कर मारी थी। पाँच मिनट की इस ड्राइविंग पर सिर्फ़ 22 हजार रुपये का खर्चा आया था जिसमें 15000 हजार गाड़ी के इलाज में और बाकी के पैसे खंभे के इलाज़ मे लगे। इस घटना के बाद हम पर कुछ बढ़िया प्रभाव पड़े। पहला हमने मिसेज शर्मा की ओर देखना बंद कर दिया। दूसरे अपनी तो क्या, दूसरों की गाड़ी में भी बैठना बंद कर दिया।

गाड़ी में बैठने के नाम पर ही हमारी रीढ़ की हड्डी में सिहरन दौड़ जाती। हमारी गाड़ी शोपीस की तरह घर में खड़ी रहती। आस-पास से गुजरने वाले लोग पहले हमारी गाड़ी देखते, फिर हमें देखते और फिर हंस पड़ते। हमारी ड्राइविंग के बारे में पूरी कॉलोनी में कहानियाँ फैलने लगी थी। कई मुंहफट लोग तो हमसे ही उन कहानियों की तस्दीक करने आ जाते। हमारे पड़ोसियों ने, हमारे घरवालों ने, रिश्तेदारों ने सबने हमें गाड़ी खड़ी रखने पर जलील किया, हमने जलालत बर्दाश्त की पर गाड़ी चलाना सीखने का नाम नहीं लिया। ऐसे ही तीन-चार साल गुज़र गये।

हम हर 6 महीने में गाड़ी की सर्विस करा लेते। गाड़ी का फर्श गलने लगा तो दो बार फर्श भी बदलवाया। एक बार अनीस मैकेनिक ने हमसे कहा-साब कब तक गाड़ी में पैसे लगाते रहोगे गाड़ी सीख क्यों नहीं लेते? हमने उन्हें सारी कहानी बताई। वह हंसे। फिर उसने सारी गलती वर्मा की निकाली जिसने बिना सिखाये ही गाड़ी का स्टीयरिंग हमें थमा दिया था। अनीस ने ऐसे ही घंटे भर समझाया। नतीजा यह निकला कि हम अनीस से गाड़ी सीखने को तैयार हो गये। तय हुआ कि अनीस पूरे पन्द्रह दिन हमको गाड़ी चलाना सिखायेंगे। बदले में हम 1500 रुपये और मिठाई का डिब्बा देंगे। हमने श्रीमती जी को अपने फैसले की खबर की। उन्होंने यह सुनकर हमारी ओर बस होठ बिचकाकर एक हिकारत भरी मुस्कान मारी कि हम घायल हो गये। हमने उनकी तारीफ़ में कुछ कसीदे पढ़े और मन में तय कर लिया कि अब तो चाहे जो हो, हम गाड़ी चलाना सीखकर ही दिखायेंगे।

यह निश्चय बहुत देर तक कायम रहा। यूं समझिये कि शाम तक हम अड़े रहे। पर जब हम रात को बिस्तर पर लैटे तो हमारा निर्णय डांवाडोल हो चुका था। रात भर हम सपने देखते रहे। कभी देखते कि कि हमारी कार हवाई जहाज बनकर हवा में तैर रही है, कभी वह एफिल टॉवर को टक्कर मारकर गिरा रही है तो कभी पीसा की टेढ़ी मीनार सीधी कर रही है। एक बार तो हमने यहाँ तक देख लिया कि हमारी कार ने चीन की दीवार गिरा दी है और चीन ने नाराज़ होकर हमारे देश पर हमले की चेतावनी तक दे दीहै। किस्सा कोताह यह है कि हमने रात भर में दर्जनों सपने देख डाले। हर बार नींद टूटने पर हमने यही निर्णय लिया कि हमें दुनिया को बर्बाद होने से बचाना है तो हमें कार सीखने का फैसला बदलना पड़ेगा।

रात भर के सपनों का नतीजा यह हुआ कि सुबह जब अनीस हमें कार सिखाने आये तो उनके आने से पहले हम वर्माजी के घर निकल चुके थे। दूसरे दिन हम शर्मा जी के घर चाय पी रहे थे। तीसरे दिन हम रावतजी को मेहमाननवाजी का लुत्फ़ दिला रहे थे। रोज़ अनीस आते, लौट जाते। पर वह भी जिद्दी आदमी थे। उन्होंने हिम्मत नहीं छोड़ी। चौथे दिन, जब हम उनसे बचकर सुबह छह बजे ही निकल रहे थे कि उन्होंने हमें लपक लिया। हम खिसियाए, वह मुस्कराये। हमने आँय -बाँय की,अपने डर का हवाला दिया। दुनिया को बर्बाद होने से बचाने में उनसे मदद की अपील की। पर वह सिर्फ़ मुस्कराते रहे। हम उनकी मुस्कान से बचने के रास्ते ढूंढते रहे। हमने उन्हेंभावी नुक्सान से बचाने के लिए 1500/- रुपये बिना सिखाये ही देने का प्रस्ताव तक कर डाला। पर उन्होंने 'मुफ्त का पैसा हराम है' पर एक प्रवचन दे डाला। हारकर हम ड्राइविंग सीखने को तैयार हो गये। पर हमने दो शर्तें रख दीं कि एक तो हम एक्सीलेरेटर पर पैर नहीं रखेंगे। दूसरे हम कार में हैलमेट लगाकर बैठेगें। आश्चर्य ! उन्होंने हमारी दोनों शर्त मान ली। अब तो हमारी मजबूरी थी, हम घर से हेलमेट लेकर आये। सर पर लगाया और कार में बैठ गये। अनीस ने खुश होकर कार स्टार्ट की। रास्ते भर वह हमें कार के पुर्जों और चलाने की तकनीक के बारे में बताते रहे पर तो हम हनुमान चालीसा के पाठ में जुटे रहे । लोग हमें हैलमेट के कारण घूर-घूर कर देख रहे थे। हंस रहे थे, पर हम निश्चित थे। सीधी बात - जान है तो जहान है। अनीस कार को एक खुले मैदान में ले आये। हमने अच्छी तरह तसल्ली कर ली, दूर-दूर तक कोई खंभा नहीं था। ट्रेनिंग शुरू करने से पहले अनीस ने हिम्मत पर लेक्चर दिया – हिम्मते मरदा, मददे खुदा का नारा दिया। हमारी गैरत वगैरहा को ललकारा। इन सबसे निपटने के बाद नये सिरे से हमें गीयर, ब्रेक, गियर वगैरहा के बारे में सिखाया। हमने एक-एक बात को दस-दस बार पूछा। इतना पूछा की उन्हें हमारे कूढ़ मगज होने पर पूरा विश्वास हो गया। आखिर हमारी ट्रेनिंग शुरू हुई। हम ड्राइविंग सीट पर बैठे। दिल धड़-धड़ बज रहा था, हाथ-पाँव कांप रहे थे, कांपती जुबान पर हनुमान चालीसा लहक रहा था। इसी अवस्था में हमने अनीस के कहे अनुसार घंटे भर पहला गियर डालने और न्यूट्रल में लाने की प्रैक्टिस की। अगले घंटे में क्लिच दबाने की प्रेक्टिस की और

एक्सीलेरेटर की तरफ भूलकर भी नहीं देखा, वरना शायद हमारी घिग्घी ही बंध जाती। इसी बीच गाड़ी बंद रही। उसके बाद हम थक गये। अनीस ने गाड़ी घर की ओर मोड़ ली। हमारा ख्याल था कि हमारी कूढ़मगजी देखकर अनीस अगले दिन नहीं आयेगें। पर वह आ गये। अगले दिन उपलब्धि यह रही कि हमने बिना एक्सीलेरेटर पर पैर रखे पूरे बीस फीट गाड़ी चलाई। वो भी फर्स्ट गियर डालकर, क्लिच के सहारे। अगले दिन बीस से तीस फिर फी दस फीट गाड़ी बढ़ती रही। आठ दिन बाद हमने लगभग क्लिच पर ही आधा किलोमीटर गाड़ी चला दी। नौवें दिन प्रैक्टिस बंद रही क्योंकि क्लिच प्लेट फुंक गयी थी। उसके ठीक होने में सिर्फ़ सात हजार रुपये और दो दिन लगे. इस अवधि में हमें नींद अच्छी आई और बुरे सपने भी नहीं आये। उसके बाद गाड़ी फिर चल गयी। एक महीने तक हमने गाड़ी चलानी सीखी। दो बार और क्लिच प्लेट बदलवाई। पर हमारा उत्साह कम नहीं हुआ। हमारी हिम्मत यहां तक बढ़ गयी कि कई बार हम अनीस के बिना भी गाड़ी निकालने लगे और क्लिच के सहारे कॉलोनी की सड़कों पर चलाने लगे। पर यह सावधानी जरूर बरतते ये कि किसी भी वाहन को दूर से देखकर जोर-जोर से हॉर्न बजाना शुरू कर देते। वह तब भी पास आता तो वहीं ब्रेक लगाकर गाड़ी खड़ी कर देते। इस चक्कर में हमने शायद सभी गाड़ी वालों से जाने कितनी गालियां खाई होंगी पर हमारी हिम्मत नहीं टूटी। ढाई-तीन महीनों बाद हमारा हौंसला बढ़ गया। हमने अनीस के सामने प्रस्ताव रख दिया कि वह हमें पूरी ड्राइविंग सिखाये, एक्सीलेरेटर के उपयोग वाली। शायद तब तक अनीस के सब्र का प्याला भी छलकने को था। उसे इस प्रस्ताव से राहत मिली। हमने धड़कते दिल और कांपते पैरों से एक्सीलेरेटर का उपयोग शुरू किया। वही हुआ जिसका डर था, एक्सीलेरेटर पर पैर रखते ही गाड़ी भाग ली। अनीस चौकन्ना थे, उन्होंने हैंड ब्रेक लिया। हमारा सीना स्टीयरिंग से टकराया। पर हमने हिम्मत नहीं हारी। सीना मलकर हम फिर ड्राइविंग में जुट गये। पन्द्रह – बीस दिन में हालात इतने बढ़िया हो गये कि हम फर्स्ट से सेकेंड गीयर तक पहुँच गये। 20 किमी की रफ्तार से अपनी गाड़ी दौड़ने लगी। एक दिन वापसी में हमने अनीस से कहा कि वह चाहे तो वापस चले जायें, आज हम गाड़ी खुद कॉलोनी में लेकर जायेंगे। अनीस ने हमें खूब समझाया पर हम नहीं माने।

हमने गाड़ी आगे बढ़ाई। खाली रास्ते में तो सब ठीक था। कॉलोनी के पास की सड़क पर थोड़ी धुकधुकी बढ़ी। जितनी धुकधुकी बढी, उतनी ही हमारी हॉर्न पर निर्भरता बढ़ी। दो-चार जगह गाड़ी बंद भी करनी पड़ी। पर फिर हनुमान जी का नाम लेकर गाड़ी आगे बढ़ा दी। गाड़ी कॉलोनी के गेट में घुस गयी। भीड़-भाड़ कम थी। वैसे भी अधिकांश लोग हमें और हमारी गाड़ी को पहचानते थे। कुछ लोगों ने हमारी गाड़ी देखते ही आपनी गाड़ी कोने में खड़ी कर दी। सब कुछ बड़े सहज ढंग से चल रहा था। हमने सपनों की बुनाई भी शुरू कर दी थी कि दो-चार दिन में हम श्रीमती जी को लॉंग ड्राइव पर ले जायेंगे। तभी डैश बोर्ड पर लगा मोबाइल बज उठा। देखा तो श्रीमती जी का ही फोन था। हमने फोन उठा लिया। अभी हम उन्हें अकेले गाड़ी लाने की बात कहने ही वाले थे कि गली के मोड़ से एक ट्रक आता दिखाई दिया जिस पर सामान लदा था। उसे देखकर हमने बांये तरफ मोड़ने की कोशिश की, उधर से एक मोटर साइकिल आ रही थी। एक तरफ मोबाइल पर बात, दूसरी तरफ ट्रक और तीसरी तरफ से मोटर साइकिल। इन तीनों ने हमारे संतुलन का बैंड बजा दिया। हमने खूब जोर से हॉर्न बजाया, खूब बचके निकलने की कोशिश की, निकल भी जाते पर मोटर साइकिल वाला बिल्कुल हमारी गाड़ी के सामने से निकाल ले गया, उसे बचाने की कोशिश में हमारे हाथ-पांव फूल गये। हमने स्टीयरिंग घुमाया, ब्रेक दबाने की कोशिश की, पर ब्रेक की जगह वही एक्सीलेरेटर दब गया। बस फिर क्या था गाड़ी ने ट्रक पर चढ़ाई कर दी। बड़ी जोर से धड़ाम की आवाज़ हुई। हमारा सिर स्टीयरिंग व्हील से टकराया और हम बेहोश हो गये। उसके बाद जब हमारी बेहोशी टूटी तो हमने देखा कि हम हॉस्पीटल के बेड पर हैं। हमारे पूरे बदन पर पट्टियाँ बंधी है। सामने डॉक्टरों की फौज और उसके पीछे आँखों में आँसू भरे श्रीमती जी खड़ी हैं। हमें होश में आते देख वह फूट – फूट कर रोने लगी। हमने उन्हें सान्त्वना देने को, उठने की कोशिश की तो उठ नहीं पाये। दर्द की तेज़ लहर बदन में दौड़ गयी डॉक्टरों ने बताया कि हमारे हाथ और पैरों की हड्डियां कई जगहों से टूटी पड़ी हैं। और हम आज तीन दिन बाद होश में आये हैं। वो तो हमारी किस्मत अच्छी थी कि हम बच गये, वर्ना उम्मीद कम थी। इतना सुनना था कि हम फिर से बेहोश हो गये।

आगे की कहानी सिर्फ़ इतनी है कि हम पूरे सात महीने अस्पताल में इलाज कराते रहे। इलाज़ पर लाखों रुपये का खर्चा आया। कई महीने बिना वेतन के छुट्टियों पर रहे। गाड़ी पूरी चकनाचूर हो गयी। नौकरी भी जाते-जाते बची। पर इस सबके बाद भी हमें बस एक ही बात का संतोष रहा कि हमने बिना किसी की मदद के गाड़ी चलाई थी वो भी पूरे एक किलोमीटर। अब हम सिर उठाकर कह तो सकते हैं कि हमें कार चलानी आती है। इतना कम है क्या ?

***

पूनम सुभाष
कौशांबी-गाजियाबाद-उ.प्र., मो. 9999846402

सबक

कहानी

अनन्या ने पुरानी नौकरी से त्यागपत्र देकर अच्छे वेतन के लिए कल ही नया ऑफिस ज्वाइन किया था। कल तो कागजी कार्रवाई और मैनेजमेंट के लोगों के साथ आवश्यक औपचारिकताएं निभाते हुए निकल गया। अपनी सीट पर अपना काम उसे आज ही से संभालना था। मानव संसाधन विभाग की अनीता ने उसका स्वागत करते हुए उसकी सीट दिखाई और कुछ फाईलें पकड़ाते हुए उसके काम की संक्षेप में जानकारी देदी।

सीट पर बैठी ही थी कि लगभग पैंतीस वर्ष का एक व्यक्ति उसके पास आया और कहने लगा "तो आपने यहां नई शुरूआत की है चलो अच्छा हुआ।" शालीनता वर्ष अनन्या खड़ी हो गई और बोली "जी। "पहली नौकरी है" उसने पूछा तो उसने कहा "जी नहीं पहले भी दो तीन जगह काम किया है" "ओह तो घिसी हुई हो" यह कहते हुए उसने अनन्या के कंधे पर अपनी कोहनी मारकर उसे बैठने का इशारा किया और चल दिया।

अनन्या का तो मानों खून खौल उठा। एक प्रकार से पहला दिन था अब तक जिनसे भी मिली सभी शालीन लगे थे मगर इसका व्यवहार देखकर तो लगा कि अभी लौट जाए अपनी पुरानी नौकरी पर भले ही वेतन कम मिले पर अपने स्वाभिमान से समझौता तो नहीं हो सकता। तभी अनीता आ गई और बोली "चलो आपका सबसे परिचय करवा दूं।" अनन्या यंत्रवत अनीता के पीछे चल दी। लेकिन उसके कानों में उसी व्यक्ति के गंदे शब्द और आंखों के सामने उसका असहनीय व्यवहार बना रहा। लगभग चालीस-पचास का स्टाफ था अपना परिचय देते हुए सबका परिचय जानते हुए, अभिवादन करते हुए 1 घंटे से ऊपर हो गया इतनी जल्दी सबके नाम पदनाम याद रखना आसान नहीं था क्योंकि मन में यही इच्छा थी कि देखे वह व्यक्ति कौन है किस पद पर है। इतनी जल्दी शिकायत भी नहीं करना चाहती थी। हां, उसने आस-पास के भी सभी सहकर्मियों से उनका परिचय दुबारा पूछकर काम शुरू कर दिया। लंच में भी किसी से ज्यादा नहीं घुली मिली पर देखा लंच की टेबल पर वो मौजूद था और सबसे हंस-हंसकर अपने किस्से कहानियां सुना रहा था। अनन्या की समझ में नहीं आया परिचय के दौरान यह शख्स कहां गायब था। आज का दिन ऐसे ही निकल गया। घर आकर रात भर वह आज की सुबह की घटना के बारे में ही सोचती रही।

अगले दिन जैसे ही ऑफिस पहुंची तो बायोमेट्रिक्स मशीन में ठीक उससे पीछे खड़ा था। उसने अनन्या को फिर से कोहनी मारकर कहा "जल्दी करो तुम्हारा ही नहीं सबका टाइम रजिस्टर होता है।" वह मन मसोसकर रह गई। वह देख रही थी कि सभी बड़े अनुशासनप्रिय और शालीन थे पर यह कौन है उसके बारे में सीधे सवाल करना भी उसे उचित नहीं लगा। चुपचाप अपनी सीट पर आकर काम में जुट गई काम की अधिकता में दिन कैसे निकला पता ही नहीं चला।

इसी प्रकार एक सप्ताह निकल गया उसने उसके बारे में लगातार नोट करना शुरू किया कि वह ऑफिस की अन्य महिलाओं से भी इसी प्रकार व्यवहार करता है और सभी चुपचाप अंदर ही अंदर घुटती हैं। उसने आज सामने बैठी उसकी ओछी हरकत की शिकार नेत्रा से पूछ ही लिया कि "यह कौन हैं" तो नेत्रा बोली "किसकी बात कर रही हो उस ठरकी की।" अनन्या चिढ़कर बोली "अरे मैं उसके चरित्र की नहीं नाम पदनाम की बात पूछ रही हूं।" नीलम हंसकर बोली "हमारे राकेश जी हैं मार्किटिंग देखते हैं कंपनी को अच्छा बिज़नेस दिलवाते हैं मालिक लोग इनकी बुद्धि का लोहा मानते हैं थोड़े शरारती हैं।" अनन्या को लगा ऑफिस में नीलम जैसी कुछ महिलाएं भी हैं जो इसकी बद्तमीजी को अन्यथा नहीं लेती वरना नेत्रा तो उसकी तरह ही परेशान लग रही थी।

अनन्या ने मन ही मन ठान लिया था कि इसे सबक सिखाना होगा। उसने शालीनता से अपने जैसी सहकर्मियों को समझाना चाहा कि हम उनके व्यवहार का विरोध क्यों नहीं करते। पर सबका यह हाल था कि बिल्ली के गले में घंटी कौन बांधे और कुछ नीलम जैसी भी थी जो उसकी बद्तमीजी का बुरा नहीं मानती थीं। हालांकि अनन्या ने राकेश को आंखों ही आंखों में विरोध जताया था और स्पष्ट शब्दों में भी कहा था कि उसे इस प्रकार का व्यवहार पसंद नहीं। लेकिन वह ढीठ था।

कंपनी का नियम था कि हर कर्मचारी को 3 महीने में एक बार अपने काम की प्रेजेंटेशन देनी होती थी। अनन्या इस दिन का बेसब्री से इंतजार कर रही थी अपने काम के अलावा उसने अपनी डायरी में राकेश की अपनी सीट पर आने उनकी एक एक हरकत का रिकार्ड भी रख लिया था।

शाम को 3 बजे लंच के बाद प्रेजेंटेशन में अनन्या को 15 मिनट का समय दिया गया था। अनन्या ने 10 मिनट में ही पावर पांइट पर प्रेजेंटेशन बड़े ही आकर्षक ढंग से प्रस्तुत कर दिया जिसकी सभी ने सराहना की। अनन्या ने सभी को हाथ जोड़कर धन्यवाद करते हुए कहा "आप तो केवल आज मेरे लिए तालियां बजा रहें हैं लेकिन मिस्टर मारकोनी तो इस दौरान 17 बार मेरी सीट पर आकर मेरी प्रशंसा के पुल बांधते रहें हैं।" यह सुनते ही सभी चारों ओर देखने लगे कि आखिर मिस्टर मारकोनी हैं कौन। जब कंपनी के चेयरमैन ने सवाल किया कि "कौन मिस्टर मारकोनी?" तो अनन्या ने हाथ के इशारे से राकेश को उठने के लिए कहा "जी ये हैं मिस्टर मारकोनी।" इतने में कोई बोल उठा अरे यह तो राकेश है। "ओह तो इनका नाम राकेश है मुझे याद नहीं हो पाया क्योंकि यह कार्यालय की हर महिला से कोहनी मारकर बात करते हैं इसलिए मैंने इनका नाम मारकोनी ही सोचा है।" राकेश को काटो तो खून नहीं। सभी ठहाका लगाकर हंसने लगे तभी चेयरमैन ने सभी को शांत किया और अपने औपचारिक वकतव्य के साथ बैठक समाप्त कर दी।

प्रेजेंटेशन के बाद अनन्या पूरे स्वाभिमान और आत्मविश्वास से अपनी सीट पर बैठ गई! बिना किसी की ओर देखे अपना काम करने लगी। चार बजे चेयरमैन ने अनन्या को अपने कक्ष में बुला भेजा। अनन्या को इस बात का अंदेशा था कि उसे चेयरमैन बुलाएंगे और इसी विषय में बात करेंगें। वह मानसिक रूप से तैयार थी कि चाहे नौकरी छोड़नी पड़े लेकिन अपने स्वाभिमान से समझौता नहीं करेगी। केबिन में प्रवेश करते ही चेयरमैन ने अनन्या से कहा "आपने सार्वजनिक रूप से जो किया वह उचित नहीं था। आपको व्यक्तिगत रूप से शिकायत करनी चाहिए थी ऐसे किसी को अपमानित नहीं करते और वैसे भी यह आपकी व्यक्तिगत समस्या है।" अनन्या सामने वाली सीट पर अनुमति लेकर बैठ गई और बोली "सर पहली बात यह समस्या व्यक्तिगत नहीं है इनका व्यवहार सभी महिलाओं के साथ ऐसा है। यह बात अलग है किसी ने आवाज नहीं उठाई। यदि मैं अकेले शिकायत करने आती तो आपको लगता कि आजतक किसी ने कुछ नहीं कहा फिर मेरे साथ ही क्यों? दूसरी बात रही अपमान करने की तो हमारा रोज अपमान हो रहा है। जो व्यक्ति हमारे स्वाभिमान पर चोट करता है उसका अभिमान भी तो आहत होना चाहिए।" चेयरमैन ने फिर कहा कि "आप अभी नई हैं और नहीं जानती कि हम सब उनकी बुद्धिमता के कायल हैं।" अनन्या भी पूरी सहजता से बोली "सर हम सब उनकी बेहूदी मति से घायल है" चेयरमैन उसकी हाजिरजवाबी से चकित थे। वह कुछ नहीं बोल पाए और उसकी ओर देखते रह गए। तभी अनन्या खड़ी हो गई और बोली सर मैं सामान्य ज्ञान की बात करती हूं रेडियो का अविष्कार मारकोनी ने किया था जो हर बात को प्रसारित कर सार्वजनिक करने के लिए बना था। समझ लीजिए इस मारकोनी ने मुझ जैसे रेडियो का पुन: अविष्कार किया है।"

'मुझे इजाजत दीजिए, सर' कहते हुए अनन्या दरवाजे से बाहर चली गई, चेयरमैन का राकेश के विरूद्ध कार्रवाई करने के लिए विवश छोड़कर।

***

विपिन जैन
कवि नगर, गाजियाबाद-उ.प्र., मो. –8851452823

लघु कथाएँ

बुढ़ापे का स्टेशन

मैं जिंदगी की गाड़ी में बैठा चला जा रहा था। कुछ दुख, कुछ सुख, कुछ आशा, कुछ निराशा, कुछ सबके जैसी इच्छाएं, बस यही सामान था मेरे पास। मेरी यात्रा मजे से कट रहा थी, कई बडे स्टेशन गुजर चुके थे। यौवन के कोच में बैठा मेरा सफर अच्छी तरह कट रहा था। सब की तरह मुझे भी अंतिम स्टेशन पर उतरना था। मैं निश्चिंत बैठा था। एकाएक, मेरे कंधे पर किसी ने हाथ रखा और कहा 'आपका स्टेशन आ रहा है, गाड़ी आगे नहीं जाएगी, आगे अपने अपने तरीके से जाना पड़ेगा'।

गाड़ी रुकी तो गाड़ी से अपने सामान के साथ उतर गया। रात का समय था। रात को सन्नाटा भी बोलता है। स्टेशन का नाम पढते हुए भी मैंने किसी से पूछा "कौन सा स्टेशन है?" उसका जवाब आया 'बुढ़ापा', गाडी आगे नहीं जाएगी, अब अपना सफर खुद तय करना होगा।' कुछ पता नहीं है आगे का सफर कैसे तय होगा, सबका अपना अपना सफर है। मैं सोचने लगा कि अभी तो मेरा सफर शुरू ही हुआ था और अभी अंतिम सिरा आ गया? किसी की आवाज आई "ऐसा ही होता है। जब हम सफर में होते हैं तो हमें पता ही नहीं लगता है और जब स्टेशन आ जाता है तो आश्चर्य से पूछते हैं कि क्या मेरा स्टेशन आ गया?" मुझे यकीन नहीं हो रहा था, मैंने सामने देखा लिखा था 'बुढ़ापा स्टेशन आपका स्वागत करता है। आपकी आगे की यात्रा मंगलमय रहेगी, ऐसी कामना करते हैं।" अब मेरे पास और कोई कारण नहीं था कि मैं 'बुढ़ापा स्टेशन' के होने पर विश्वास न करता।

दूसरे का सुख

कभी हम दोनो साथ-साथ पढ़ा करते थे। दोनों को साहित्य पढ़ने और लिखने का शौक था। आज लंबे अरसे बाद मुलाकात हो रही थी। थोड़ी सी बातचीत आगे चली। तो वह बोला 'अब किसी की खुशी से कोई खुश नहीं होता। सबको अपनी ही खुशी चाहिये। अपना ही राग अपना रह गया है।'

'और बता तेरा लिखना क्या चल रहा है?' उसने पूछा।

'मेरे पास लिखने का ही तो सुख रह गया है।' मैंने उत्तर दिया।

मेरी बात पर वह बोला, 'हमें भी पढवा दिया कर हम भी तेरे सुख में शामिल हो जाएंगे।'

'हां क्यों नहीं? मुझे भी तेरे पढने पर खुशीहोगी! देख अभी इस मैगजीन में एक कहानी छपी है। उसे पढ़ना और बताना। कैसी लगी? इस कहानी का शीर्षक भी 'दूसरे का सुख' है। चाय नाश्ते के बाद जब वह उसे बाहर तक विदा करके लौटा तो देखा पत्रिका वहीं मेज पर पड़ी थी और पत्रिका में छपी कहानी का 'दूसरे का सुख' का पन्ना जैसे उसका मुंह चिढ़ा रहा था।

***

डॉ. रेखा चौधरी
खुर्जा-बुलंदशहर-उत्तर प्रदेश, मो. 8368886088

पंख का नुचना

पुस्तक समीक्षा

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी काव्य-जगत में अपनी अस्मिता, अपने अस्तित्व का हीरक स्तम्भ स्थापित करने वाला 'नवगीत' आज सर्वाधिक लोकप्रिय विधा बन चुका है। नवगीत के पुरोधा डॉ0 शम्भूनाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह से चली आ रही छः-सात दशकों की लम्बी परम्परा में 'नवगीत' निरन्तर प्रगति करता चला आ रहा है और आज एक प्रतिष्ठित विधा के रूप में उभर कर हमारे समक्ष प्रस्तुत है। देश, समाज, परिस्थितियाँ, रूचियाँ एवं जीवन के बदलते संदर्भों के साथ नवगीत की विषय-वस्तु बदली, बुनावट का तरीका बदला, भाषा में भी परिवर्तन हुए, परन्तु अनुभूत सत्य को पूरी ईमानदारी के साथ बयां करने का स्वभाव नहीं बदला। पारंपरिक गीतों में जहाँ मांसलता, व्यक्तिगत जीवन की पीड़ा तथा सौन्दर्य चित्रण के प्रति गहरा मोह दिखाई देता है, वहीं इससे इतर नवगीत जीवन की विसंगतियों से जूझने का संदेश देता है। छायावादी जीवन-दृष्टि से पृथक 'नवगीत' वैज्ञानिक दृष्टिबोध का समर्थक है। व्यवस्था की विद्रूपताओं, विसंगतियों के बीच भी रागात्मकता के क्षरण को रोकने का प्रयास है।

नवगीत-पंथ के प्रमुख पंथियों में राजेन्द्र प्रसाद सिंह, उमाकान्त मालवीय, रविन्द्र भ्रमर, बालस्वरूप राही, रमेश रंजक, कुंवर बेचैन के साथ ही नवगीत के नवोत्कर्ष काल में कवि सुभाष वसिष्ठ जी का नाम आदर और सम्मान से लिया जाता है। वसिष्ठ जी के गीतों में जीवन की विसंगतियाँ, महानगरीय त्रासदी, मानवीय संवेदनाओं का ह्रास, बदलते जीवन-मूल्य, राजनीतिक विद्रूपता, सामाजिक यथार्थ, जिजीविषा के जीवन्त चित्र दिखाई देते हैं।

सुभाष वसिष्ठ जी 20वीं सदी के आठवें दशक के नवगीतकार हैं। मूलतः पश्चिमी उत्तर प्रदेश के हापुड़ जिले में 04 नवम्बर 1946 में जन्मे कवि सुभाष वसिष्ठ जी बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी हैं। श्रेष्ठ शिक्षक, जनप्रिय कवि, तीखे व्यंग्यकार, कुशल निर्देशक, अभिनेता, पत्रकार व समीक्षक के रूप में हिन्दी साहित्य जगत में उनकी बड़ी पहचान एवं बड़ी प्रतिष्ठा स्थापित हो चुकी है। 'बना रह है जख्म तू ताजा' (नवगीत संग्रह), 'पंख का नुचना' (नवगीत संग्रह), तथा 'मैं चोर हूँ मुझ पर थूको' (नाट्य रूपान्तर) आदि उनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। साथ ही प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं धर्मयुग, कादम्बिनी, वागर्थ, हिन्दुस्तान, नवभारत टाइम्स आदि के नवगीत विशेषांकों में वसिष्ठ जी की कविताओं को विशिष्ट स्थान मिलता रहा है।

सुभाष वसिष्ठ जी का ताजातरीन गीत संग्रह "पंख का नुचना" निरन्तर संवेदनशील हो रहे मानव-समाज की संवेदनाओं को पुनः जगाने के लिए रचा गया उद्बोधन गीत है। संग्रह की भूमिका में अपने गुरूवर के वक्तव्य का उल्लेख भी इसी संदर्भ में करते दिखाई देते हैं-"संवेदनशीलता मनुष्य को मनुष्य बनाती है।" महानगरीय जीवन की त्रासदी, भुखखमरी, मजदूरों का जीवनसंघर्ष और अभाव को कवि वसिष्ठ "लौट कर आये नहीं आखर" कविता में बड़ी सजीवता से चित्रित करते हैं-

चेन उतरी साइकिल पर, वापसी घर की
राशनी चिन्ता लदी सिर, कंडिया भर की।

मुफलिसी और गरीबी में संवदनाएं किस तरह काठ हो जाती हैं, इसका सुन्दर उदाहरण गीत है यह गीत।

राजा राम के रामराज्य को उसी भूमि, उसी धरती पर विखण्डित होते देख कवि आहत है। बाबरी मस्जिद के विध्वंस के बाद चतुर्दिक व्याप्त भय और आतंक को वसिष्ठ जी 'घायल अवध' कविता में चित्रित करते हैं-

सिर्फ दहशत, सिर्फ दहशत, सिर्फ दहशत है।
शोर से सरयू थमी है, कांपती हर तरफ रहमत है।

विकट विपरीत परिस्थिति में भी कवि जीवन का संदेश देता है -

मन में लिखा जेठ है पगले,
मन में ही सावन, क्यों घबराये मन।

सामाजिक और आर्थिक विषमता मानव समाज और मानवीयता दोनों के लिए खतरा है। मनुष्य-मनुष्य के बीच अमीरी और गरीबी की गहरी खाई है। 'बड़ा नगर' कविता में कवि वसिष्ठ समाज के इस नग्न यथार्थ को लिखते हैं-

कैसा यह बड़ा नगर कैसे हुक्काम,
कीड़े से भी बदतर जो आदम आम।

'धूप हमारे आंगन की' तथा 'पंख का नुचना-4' कविता में कवि सामाजिक सद्भाव के स्वप्न बुनता दिखाई देता है। सामाजिक रूढ़ियों, जाति एवं वर्गगत भेदभाव तथा तर्कहीन उच्चता-नीचता की अन्तहीन कथाओं से कवि समाज की 'मुक्ति' चाहता है।

युग युगों से व्रणों का लेकर रिसाव,
दलित बंदा झेलता है पंख का नुचना।

अमानवीयता के गहरे होते प्रसार पर कवि की चिन्ता और छटपटाहट को कविता 'खून ने हत्या करी, मैं हूँ निःशब्द, भ्रष्ट आचरण, मूल्य ऊँचे, वटवृक्षी मान में स्पष्ट देखा जा सकता है। वसिष्ठ जी अपने गीत "हम मजदूर", "काहे तू इतना रोये", "पंख का नुचना-6" ,"लौटकर आये नहीं आखर", "बड़ा नगर" में युगीन यथार्थ को चित्रित करते हुए बेरोजगारी, मुफलिसी, भूखमरी, बदहाली से त्रस्त निम्न मध्यमवर्गीय जन-समूह की मुक्ति की अपील करते हैं। साथ ही 'पंख का नुचना-3' तथा 'पंख का नुचना-5' कविता में स्त्रियों की दुर्दशा और व्यथा के चित्र मिलते हैं।

औद्योगिकीकरण, महानगरीय जीवनशैली तथा अपसंस्कृति के दौर में रागात्मकता और संवेदना को सहेज लेने की अकुलाहट तथा बेचैनी 'नानी याद आयी', 'उम्र बीती शहर में', 'ऐसा छूटा घर' गीतों में स्पष्ट देखी जा सकती है।

'पंख का नुचना' संग्रह के शिल्प या अभिव्यक्ति पक्ष की बात करें तो कहा जा सकता है कि जनसरोकारों से जुड़े उनके गीतों की भाषा भी जन के करीब मिलती है। घेर, खूँटे, नाद, सानी, गमक, बिटिया, खेस, दरिया, दोतही जैसे शब्दों का प्रयोग कविता को जन साधारण के मर्म तक पहुँचाने का अनूठा प्रयास है। दूसरी तरफ परिष्कृत शब्दों का प्रयोग गीतों को गरिमामय और वजनदार बनाने में सफल हुए हैं।

संग्रह के गीतों में मुक्त छन्द तथा मुक्त लय का नपा-तुला प्रयोग मिलता है। भाषा के गठन में बहुप्रचलित प्रतीकों, सुबोध सरल बिम्बों को अपनाकर कवि साधारण जनजीवन के स्वप्नों को चित्रित करने में सफल हुआ है। अपनी कुशल रचनात्मक विशिष्टता के कारण ही उनके गीत आम जनों की चिन्ताओं, अभावों, आशा एवं उम्मीदों का स्वर बना। संग्रह के कई गीत; जैसे-'उम्र बीती शहर में', 'हम मजदूर', 'बहता पानी', 'धूप हमारे आंगन' के सदैव प्रासंगिक एवं शाश्वत बने रहने की बड़ी सम्भावनाएँ दिखाई देती हैं।

सन् 1991 से लेकर सन् 2010 तक के लगभग दो दशकों के बीच रचे गये नवगीतों का संग्रह 'पंख का नुचना' का प्रत्येक गीत युगीन यथार्थ का शब्द-चित्र जान पड़ता है। गीतों के इस रंग-बिरंगे 'कोलाज' में कवि वसिष्ठ जी की संवेदनाओं के विविध रूपों के दर्शन होते हैं। सामाजिक विसंगतियाँ, साम्प्रदायिकता, अमानवीयता, बढ़ती, संवेदनहीनता तथा मूल्यहीनता से संघर्ष करता हुआ कवि 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' की मंगल कामना की कल्याणकारी भावना अपने गीतों में पिरोए हुए है।

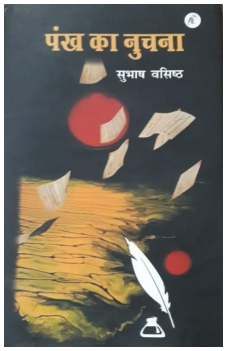

पुस्तक : पंख का नुचना
लेखक: सुभाष वसिष्ठ
प्रकाशक: लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, दरियागंज, नई दिल्ली
ISBN: 978-81-970289-9-1
प्रकाशन वर्ष 2024

डॉ. पूजा हेमकुमार अलापुरिया 'हेमाक्ष'
नवी मुंबई

चिट्ठी वाले दिन

पुस्तक समीक्षा

जैसे-जैसे समय करवट ले रहा है वैसे-वैसे अनेक प्रचलित रवायतों में भी बदलाव देखने को मिल रहे हैं और बदलाव भी इतनी बड़ी मात्रा में कि कुछ चीजें तो अपना अस्तित्व ही खो चुकी हैं। एक समय था जब राजा-महाराज अपना संदेश हरकारों के माध्यम से भेजा करते थे। समय के अभाव, संदेश की गोपनीयता आदि को ध्यान में रखते हुए संदेश भेजने का माध्यम हरकारों के स्थान पर कबूतर बने। उन्हें प्रशिक्षण देकर तैयार किया जाता। फिर एक समय ऐसा भी आया जब संदेश के लिए फोन इस्तेमाल किया जाने लगा लेकिन फोन आ जाने पर भी चिट्ठी के आदान-प्रदान में कोई कमी नहीं आई थी। मगर संदेश के आधुनिक यंत्रों के चलते अनौपचारिक पत्र व्यवहार कहीं लुप्त सा हो गया है क्योंकि पलक झपकते ही संदेश पहुँच भी जाता है और उसका जवाब भी मिल जाता है तो चिट्ठी के टंटों में चार-छह रोज का समय क्यों बर्बाद करना। लुप्त होती चिट्ठी की खुशबू, अपनत्व, स्नेह, इंतजार आदि की स्थिति को भाँपते हुए हिंदी साहित्य जगत के बहुचर्चित एवं अनेक साहित्य सम्मानों से अलंकृत बाल साहित्यकार डॉ राकेश 'चक्र' जी ने अपनी भावनाओं को गद्य-पद्य शैली में 'चिट्ठी वाले दिन' के रूप में लिखा है।

बच्चों को संस्कार, संस्कृति, सामाजिकता, प्रकृति, उचित-अनुचित आदि से परिचित करना हो तो इन तथ्यों को सिखाने के लिए माता-पिता बच्चे के जनमोपरांत, शिक्षक पाठ्यक्रम के अनुसार और समाज समय-समय पर सिखाता रहता है। राकेश जी ने अपनी पुस्तक 'चिट्ठी वाले दिन' में बच्चो के लिए 'एक पंथ सौ काज' वाले मुहावरे को सिद्ध कर दिया है। 'चिट्ठी वाले दिन' में बड़ों के प्रति आदर, आपसी स्नेह, समय का सदुपयोग, अधिकारों का ज्ञान, सुबह जल्दी उठना, प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों से प्रेम, योगा, खान-पान का विशेष ध्यान, आधुनिक तकनीकी यंत्रों के दुरुपयोग से बचना आदि एक ही पुस्तक में समाहित है।

दादा जी और उनके नटखट लिफाफा और पोस्टकार्ड के माध्यम से बच्चो को सिखाने का प्रयास किया गया है। दादा जी ने आधुनिकता को मध्य नजर रखते हुए लिफ़ाफ़े और पोस्टकार्ड में चिप लगा रखी है जिससे वे उन दोनों पर नजर रख सकें। दोनों को बगीचे से बड़ा स्नेह है। वे दोनों दादा जी से नज़ारे चुराकर हर रात बगीचे में जाते हैं और सुबह होने से तथा दादा जी के जागने से पूर्व वापस लौट आते हैं और रैक में अपने स्थान पर बैठ जाते हैं। पोस्टकार्ड बड़ा और लिफ़ाफ़ा छोटा है मगर दोनों में भाइयों-सा स्नेह है।

दादा जी की बँधी-बँधाई दिनचर्या है। वे सुबह उठते ही सबसे पहले ईश्वर का धन्यवाद करना और फिर 3-4 गिलास गुनगुना पानी घूँट-घूँट करके पीना, बगीचे में टहलना, शौचलय जाना, सुबह और रात को सोने से पहले ब्रश करना, दस बजे नाश्ता करना, पक्षियों को दाना डालना, प्राकृतिक विटामिन हेतु कुछ देर धूप में बैठना, दोपहर का भोजन हल्का तथा कुछ फलहार खाना, रात का भोजन सात बजे से पहले खाना, खाना खाने के डेढ़ घंटे बाद पानी पीना आदि।

दादा जी की दिनचर्या के माध्यम से लेखक बच्चों और बड़ों सभी को संदेश देना चाहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य को इसी दिनचर्या का अनुसरण करना चाहिए।

बच्चो के रुझान को देखते हुए पुस्तक में गद्य और पद्य दोनों शैली का उपयोग किया गया है। गुलाब, चम्पा, बेला, सदाबहार, गिलोय, तुलसी, नीम आदि फूलों एवं वनस्पतियों की उपयोगिता एवं विशेषताओं को काव्य पंक्ति में व्यक्त किया गया है जिसे बाल पाठक शीघ्र समझकर कंठस्थ कर सकते हैं।

"मैं गुलाब हूँ मुझसे सीखो
काँटों में भी हँसना ।
सोच-समझकर बातें करना
इधर-उधर ना फँसना ।"

कटते जंगल और बढ़ते प्रदूषण के प्रति जागरूकता एवं कर्तव्य की ओर भी ध्यान केंद्रित करवाया है। इस विनाश का जिम्मेदार जितना वन विभाग है उतना ही आम इंसान भी । तकनीकी दौर में गुनहगार को कैसे सबक सिखाया जाए इसका बड़ी सहजता से वर्णन किया है। राकेश जी लिखते हैं:

"भइया !देखा आज भी उन लोगों ने हवा में जहर घोल दिया।"

"अच्छा भइया! अभी मैं सौ नंबर पर डायल करके पुलिस को बुलाता हूँ ..."

"दो कबाड़ी लोग क्विंटलों बिजली के छोटे-छोटे तारों को इकट्ठा करके उन्हें जलाकर, उसमें से तांबा निकाल रहे है ।"

"पुलिस ने दोनों प्रदूषण फैलाने वालों को गिरफ्तार कर लिया था।"

राकेश जी ने मनुष्य द्वारा बिजली के दुरुपयोग पर भी प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं – "शाम को तो अंधेरा होने से पहले ही लाइटें जला देते हैं और देर रात तक गली में हंगामा काटे रहते हैं।" लेखक ने पोस्टकार्ड के माध्यम से भारतीय डाकघर के इतिहास, डाक व्यवस्था की सेवाओं का एकीकरण, डाक विभाग की विस्तृत गतिविधियाँ, स्वतंत्रता संग्राम के दौरान डाक विभाग की व्यवस्था, स्वतंत्रता उपरांत डाकघर का मील का पत्थर बनना आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

'चिट्ठी वाले दिन' डॉ राकेश जी का अनूठा साहित्य है। राकेश जी ने गागर में सागर भरने का प्रयास किया है, जोकि एक सफल प्रयास है। पुस्तक का मुख्य पृष्ठ आकर्षक हैं। मुख्य पृष्ठ पर चित्र में उभरा लेटर बॉक्स, नाचता हुआ चिट्ठी का लिफाफा और दादा जी बहुत रोचक हैं। लेखक ने 'चिट्ठी वाले दिन' पुस्तक अपने पूजनीय माता-पिता को समर्पित की है। पुस्तक की भाषा सरल, सहज, मुहावरेदार, काव्यात्मक एवं रोचक है। प्रतीकात्मक होने के कारण बाल पाठकों को अत्यंत प्रभावित करेगी। राकेश जी द्वारा उठाए गए सभी सामाजिक मुद्दे अपना संदेश देने और पाठकों को कर्तव्यनिष्ठ बनाने में सार्थक है। डॉ. राकेश 'चक्र' को अनेक शुभकामनाएँ एवं बधाई।

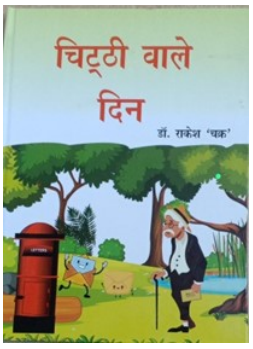

पुस्तक : चिट्ठी वाले दिन
लेखक : डॉ. राकेश 'चक्र'
प्रकाशन वर्ष : 2022

डॉ. अंजू दुबे
बुलंदशहर – उत्तर प्रदेश

इंटरनेट युग और पुस्तकें

पुस्तक समीक्षा

कभी कबीर ने कहा था 'पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ' यानि पढ़ना है या पढ़ा लिखा कहलाना है तो पोथी पढ़नी ही होगी। कालान्तर में पोथी का अर्थापकर्ष हुआ और नए जमाने में पुस्तक का पदार्पण होता है, कागज पर छापे खाने में छपी पुस्तक। जमाना फिर बदला और छापेखाने की पुस्तक की जंग आज अन्तर्जाल पर उभरी पुस्तकों की इबारत से है और इसी जंग से या सुलहनामे से रूबरू कराती है-डॉ0 देवकीनंदन शर्मा एवं डॉ0 ईश्वर सिंह के कुशल संपादन में 'ए0आर0 पब्लिशिंग कंपनी, दिल्ली' से प्रकाशित पुस्तक 'इंटरनेट युग और पुस्तकें'। प्रतिष्ठित लेखकों/कवियों/अकादमिक दिग्गजों के लेखों से सजी यह पुस्तक अपने सजातीयों के कागजी एवं आभारी स्वरूपों का गहन विमर्श प्रस्तुत करती है।

पुस्तक का आरम्भ प्रसिद्ध भाषा विज्ञानी प्रो0 महावीर सरन जैन के आलेख से होता है। वे आँकड़ों के साथ बताते हैं कि पश्चिमी देशों की तुलना में भारत के लोग अधिक संख्या में मुद्रित पुस्तकें पढ़ते हैं। यद्यपि इसमें दिन प्रतिदिन तेजी से गिरावट आ रही है। वे एक विश्वव्यापी अनुसंधान के हवाले से बताते है कि अधिक लम्बे या जटिल ग्रन्थों के डिजिटल पठन को समझना अधिक चुनौतीपूर्ण है।

डॉ0 श्याम सुंदर दुवे के आलेख को पढ़ना तो बचपन की गलियों में फिर से पहुँच जाना है। मुद्रित पोथी के रूप रस गंध-शब्द स्पर्श के मनोहारी वर्णन से तन में सिहरन होती है, मन पुलक से भर उठता है। अतीत से वर्तमान की यात्रा पर निकला लेखक बताता है कि अब इसी तरह इलेक्ट्रॉनिक गैजेट्स से ही काम लेना पड़ेगा, चाहे अच्छा लगे या न। फिर भी अमेरिकी राष्ट्रपति का भारत के प्रधानमंत्री को रोबर्ट फ्रॉस्ट की पुस्तक को भेंट में दिया जाना उम्मीद की किरण जगाता है कि किताब बची रहेगी।

पुस्तकों को हम साक्षात् सरस्वती मानते थे, अतः भूमि पर गिर पड़ने पर सिर आँखों पर लगाने का चलन हमारे जमाने में था और हमने अपने बच्चों को भी यही सिखाया, किन्तु यह परम्परा आगे भी कायम रहेगी, इससे विजय रंजन पूर्ण आशान्वित नहीं है। अब बुकशेल्फ से पुस्तकें ही गायब नहीं हुई बल्कि बुकशेल्फ ही गायब हो गये है। अब पुस्तकें जरूरत नहीं, मोबाइल जरूरत बन गया है। उनकी चिंता लुप्तप्राय हिन्दी पत्रिकाओं के प्रति भी है। प्रकाशकों की दुर्लभता, रॉयल्टी की अलभता के मध्य भी विजय रंजन जी को दृढ़ विश्वास है कि हम रहें न रहे पुस्तक रहेगी और कागज वाली पुस्तक भी रहेगी। क्योंकि वे 'सहज है और सर्वदा लब्ध भी'। प्रतिवर्ष मनाए जाने वाले पुस्तक मेले व 23 अप्रैल का पुस्तक दिवस बताते है कि पुस्तकें कल भी थी और कल भी रहेंगी।

अरविन्द कुमार 'विदेह' का आलेख लिखने के विचार, प्रयास व विकास की कथा से आरम्भ होता है। फिर जैसे-जैसे अभिव्यक्ति की लालसा बढ़ी तो पुस्तकें लिखी जाने लगी, शैली बदली, आकार बदला, रूप बदला। कागज के साथ इंटरनेट पर

भी आ गई। अधिकांश पुस्तकों के कागजी व डिजिटल संस्करण साथ ही निकलते है। अब अखबार डिजिटल भी हो गए है। अतः इस परिवर्तमान का आनन्द लें व अनुपम विकास उत्सव के रूप में सोल्लास मनाएं।

इंटरनेट युग में पुस्तकों की प्रासंगिकता तलाशते हुए योगेन्द्र कुमार कहते हैं कि पुस्तक वैचारिक उद्वेलन का काम करती हैं। पढ़ने से व्यक्ति विचारशील, कल्पनाशील व सृजनशील बनता है। वे मानते हैं कि ज्ञान के इस युग में भले ही इंटरनेट की सर्वव्यापकता दृश्यमान है, किन्तु पुस्तकों की अपरिहार्यता अक्षुण्ण है।

डॉ0 दिनेश पाठक 'शशि' अपने आलेख 'इंटरनेट के खतरे और पुस्तकें' में हमें आगाह करते है कि इंटरनेट हमें बहुत सारे दुर्व्यसन परोस रहा है। डिजिटल दुनिया हमें 'बिन माँगे मोर' देती है जबकि अच्छी पुस्तकें देव प्रतिमाओं सरीखी हैं और आशीष प्रदान करती है।

डॉ0 अंजू दुआ जैमिनी खुशबू कागजी पुस्तकें पढ़ने में सुकून का अनुभव करते है। उनका मानना है कि युवा पीढ़ी जैसे-जैसे प्रौढ़ होती जाएगी, वह कागजी पुस्तकों के महत्व को समझेगी और अपने घर में निजी पुस्तकालय अवश्य स्थापित करेगी।

'सुरतालगंज' के रचनाकार डॉ0 अनूप सिंह इंटरनेट को एक विचार क्रान्ति मानते हैं जो सूचनाओं और विचारों का त्वरित फैलाव करता है। पुस्तकों की पठनीयता की कमी के लिए वे शिक्षा पद्धति को जिम्मेदार मानते है। वे चिन्तित हैं कि हमारे बच्चों के हाथों से, मस्तिष्क से किताबें छिनती जा रही हैं। किन्तु यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि स्क्रीन पर पढ़ी या पढ़ाई जाने वाली सामग्री पुस्तकों से ही ली जाती है।

रमेश प्रसून निष्कर्ष रूप में कहते है कि सभी प्रकरण की सूचनाओं, घटनाओं एवं सृजन को उनकी पूर्ण गुणवत्ता के साथ स्थायी रूप से अनुरक्षित रखने के लिए कागजी पुस्तकों हेतु लिखना, उनका छपते रहना तथा उनका पढ़ना-पढ़ाना इंटरनेट सिस्टम के समानान्तर आवश्यक भी है और समीचीन भी।

डॉ. प्रभाकर जोशी के अनुसार पुस्तकें कालजयी हैं तथा वे मनुष्य के जीवन के अंतिम दिन तक साथ देती है।

डॉ. ईश्वर सिंह इंटरनेट को पुस्तकों के साथ भी और पुस्तकों के खिलाफ भी मानते है। पुराने और नए जमाने में संतुलन बैठाते हुए, पकड़ने और छोड़ने की क्रिया को विवेकपूर्ण बनाने पर बल देते है। इंटरनेट और पुस्तकों को एक दूसरे का सहयोगी मानकर दो महाशक्तियों के रचनात्मक पहलुओं को उजागर करने के साथ-साथ किसी एक को दूसरे का प्रतिस्थापक मानने की भूल से होने वाली हानियों से बच सकेंगे।

डॉ. नीलम गर्ग कहती है कि युवा पीढ़ी आज पुस्तकों से ही दूर हो रही है। चाहे वे कागजी हों या आभासी, उसे पुस्तक ही नहीं पढ़नी। पठनीयता के ह्रास के लिए वे सोशल मीडिया, बाजारवाद, शिक्षा प्रणाली, किताबों की कीमत व शॉर्टकट से सफलता पाने की लालसा को उत्तरदायी ठहराती है।

पुस्तक की आवश्यकता ने, उसके विचार ने छापेखाने के आविष्कार को साकार किया। पुस्तक हमारे हाथ में आई, उसने हमें संस्कार दिए, परिष्कार दिए, ऐसा मानना है प्राचार्य डॉ. स्वप्ना उप्रेती का। वे कहती हैं कि पुस्तकें तनिक विचलन पथ पर हैं किन्तु मुद्रित पुस्तकें सार्वकालिक हैं।

डॉ0 रेखा चैधरी पारम्परिक पुस्तकों की वकालत करती है, क्योंकि वे शुचिता का प्रतीक हैं, प्रामाणिक हैं, उनको पढ़ते समय अनचाहा डिजिटल व्यवधान नहीं होता, स्वास्थ्य पर प्रतिगामी प्रभाव नहीं पड़ता और दूरदराज के इलाकों में पिछड़े प्रदेश में यही काम आती है।

डॉ. ममता शर्मा तकनीक के साथ कदमताल करने की समर्थक हैं, वे कहती हैं कि आधुनिक युग में मशीनीकरण के साथ

जो कुछ पिछड़ गया था, उत्तर आधुनिक में वह पुनर्जीवित हो गया है। अतः हमें आशान्वित रहना है। लेकिन कौन किस समय किसका पर्याय बन जाए कहा नहीं जा सकता। 'कभी नाव गाड़ी पर, कभी गाड़ी नाव पर'।

'पुस्तकें बहुमूल्य धरोहर हैं,' ऐसा मानना है रजनी सिंह का। पुस्तक के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। इतिहास साक्षी है कि कितनी पुस्तकों ने न जाने कितनों का जीवन आपादमस्तक बदल दिया।

डॉ. शीनू 'पुस्तकों से दूर होती युवा पीढ़ी' को देखकर चिन्तित हैं। सफदर हाशमी, गुलजार, गांधी टॉलस्टाय, थोरो, प्रेमचन्द्, तिलक के उद्धरणों को हमारे सामने रखते हुए, उनका स्मरण करते हुए कहती है कि किताबें वह जादू है जो हमारे सपनों को सत्य कर सकता है। डॉ. मधु मिश्रा पुस्तकों के स्थायित्व पर चर्चा करते हुए पुस्तक मेलों की आवश्यकता पर सार्थक बहस करती हैं।

विभिन्न तर्कों के माध्यम से डॉ. फैजान अहमद बताते हैं कि पुस्तकों की प्रासंगिकता बरकरार है। बिन्दुवार किया गया उनका विश्लेषण पाठ को बोधगम्य बनाता है। पीयूष त्रिपाठी हमारा ध्यान पाठकों की बढ़ती कमी की ओर खींचने का प्रयास करते हैं। वे कहते हैं आज के विद्यार्थी पाठ्यक्रम से इतर क्या पाठ्यक्रम ही पूरा नहीं पढ़ते। बीसवीं सदी का सिनेमा टेलिविजन अपने साथ इंटरनेट लाया और अब तो कृत्रिम बुद्धिमता भी आ गई है। सूचनाओं के मकड़जाल से बचाने में विद्वान ही नहीं विज्ञापन भी आगे आ रहे है। बच्चों में पढ़ने की आदत कैसे डालें यह वैश्विक चिन्ता बनती जा रही है। इसमें अच्छी पुस्तकें ही एकमात्र उपाय है।

मधु वार्ष्णेय का आलेख आश्वस्त करता है कि पुस्तक निर्वैकल्पिक हैं। इंटरनेट पर यदि भटकाव है, तो पुस्तकों में सुकून है। प्रेम कुमार शर्मा 'प्रेम' कहते हैं कि परिवर्तन नैसर्गिक नियम है। लिखना और पढ़ना हर युग की आवश्यकता थी और रहेगी, माध्यम कोई भी हो सकता है। गीता रस्तोगी 'गीतांजलि' ने पुस्तकों में कन्स्ट्रेशन और इंटरनेट में डिस्ट्रेक्शन अनुभव किया है। अलका शर्मा ने कहा है कि पढ़ना कम नहीं हुआ है केवल माध्यम बदला है।

पुस्तक का अंतिम आलेख अरूण कुमार तोमर का है। उन्होंने सारे विमर्श का निचोड़ इस प्रकार रखा है कि परंपरागत पुस्तकें ही महत्वपूर्ण हैं। कुल मिलाकर यह पुस्तक इंटरनेट के युग में पुस्तकों की स्वीकार्यता, पुस्तकों की यात्रा, इंटरनेट के खतरे, इन सभी पर गहन विमर्श के साथ एक पठनीय समाधान प्रस्तुत करती है। संपादकद्वय को साधुवाद।

***

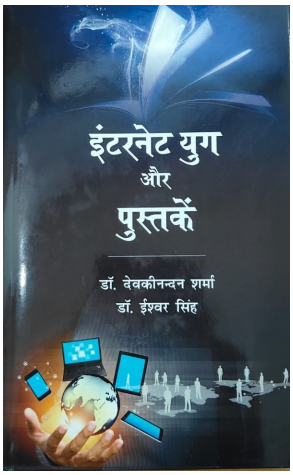

पुस्तक : इंटरनेट युग और पुस्तकें
संपादक: डॉ. देवकीनंदन एवं डॉ. ईश्वर सिंह
प्रकाशक: ए आर पब्लिशिंग कंपनी, अजीत विहार दिल्ली
ISBN: 978-93-94165-86-1
प्रकाशन वर्ष 2023 मूल्य: 395 रू.

ब्रज किशोर वर्मा 'शैदी'
राजेंद्र नगर, गाजियाबाद-उ.प्र., मोबाइल 9871437552

पुस्तक समीक्षा

अपनी माटी - अपनी कविता

संकलन आपका,लगता है ज्यों बहा दी है,
काव्य-जल से ही विभूषित सुधामयी सरिता।
सम्मिलित जो भी हुई आपकी पुष्पांजलि में,
अपनी माटी में ही रंजित है वो अपनी कविता।।

है चयन आपका हर दृष्टि से समता-मूलक,
इसमें कवि ही नहीं, कवयित्रियाँ भी शामिल हैं।
वांछित लक्ष्य की उपलब्धि की ही हैं द्योतक,
जो भी रचनाएं हैं,वे वंदना के क़ाबिल हैं।।

संकलित जितनी भी रचनाएं हुईं संग्रह में,
अनुक्रमणिका में भले ही गिनें तो बीस हैं ये।
किंतु जब करते हैं पाठ उनका, तो ये लगता है,
चाहे जिस दृष्टि से भी देखें तो इक्कीस हैं ये।।

गीत संग्रह के लगें यों, शुभम के आँगन में,
ज्यों रंगोली हो सजी, या दिये जलाये हैं।
बेटियाँ हैं कहीं दादाजी,कहीं पिताश्री हैं,
दृश्य क्या-क्या न मनोहर यहाँ सजाये हैं।।

तीज-त्यौहार हों,रिश्ते हों या कि स्मृतियाँ,
जितनी रचनाएं हैं,सब में है गंध माटी की।
है झलक सब में, सबल लेखनी के माध्यम से,
जिसमें अपनत्व रहा हो, उसी परिपाटी की।।

"शुभम्"-समाज के कवियों की लेखनीयों से,
समय की रेत पर अंकित,उदात्त छवियाँ हैं।
मात्र कविताएं ही इनको तो नहीं कह सकते,
काव्य-रस पूर्ण ये आनंदमयी नदियाँ हैं।।

यह शिविर-सम है "शुभम" की ही काव्य-यात्रा का,
जो कि संबद्ध है हिंदी परम- पुनीता से।
जिसके गीतों में निहित देश-प्रेम, मानवता,
गीत-संग्रह वो भला कम कहाँ है गीता से??

है सृजन-धर्मिता का कीर्तिमान ही जैसे,
पायदान एक नया है ये काव्य-सीढ़ी का।
दृष्टियाँ हैं नवीन,काव्य-स्रजन की इसमें,
प्रतिनिधित्व जिसमें रहा खूब तीन पीढ़ी का।।

सहगमन हो रहा उस पर ही निरंतर अब तक,
लीक जो आपने कुछ सोच कर बनाई है।
संकलित पुष्प वही आपने किये, जिनमें
गंध इस देश के परिवेश की समाई है

हुई प्रारंभ "शुभम"-पथ पे काव्य-यात्रा जब,
सहगमन हेतु मुकेश निर्विकार जी आये।
खूब संगम था ये अनुभव का और यौवन का,
फलस्वरुप इसके,पदक आज कीर्ति के पाये।।

अनवरत है ये गमन आपका लेखन-पथ पर,
जुड़ गया एक पदक और कीर्ति-माला में।
दे रहा हूं यही शुभकामना हृदय-तल से,
ऊष्मा बढ़ती रहे यूँ ही सतत ज्वाला में।।

पथ-प्रदर्शक हैं जहाँ आप औ' संरक्षक भी,
मेरा सौभाग्य कि इस मार्ग पे सहगामी हूंँ।
वर्ना, साक्षी थी जो विस्मृत परंपराओं की,
मैं उसी भग्न हवेली का क्षुद्र स्वामी हूंँ।।

अंत में कहना ये चाहूँगा विनय-पूर्वक मैं,
कुछ अटक-सी हुई महसूस पाठ में अक्सर।
वर्तनी की भी खटकतीं अशुद्धियां कुछ-कुछ,
काश! कुछ ध्यान दिया होता प्रूफ-रीडिंग पर

पुस्तक : अपनी माटी अपनी कविता
संपादक: डॉ. देवकीनंदन शर्मा एवं मुकेश निर्विकार
प्रकाशक: ए आर पब्लिशिंग कं., अजीत विहार, दिल्ली
ISBN: 978-93-88130-81-3
प्रकाशन वर्ष 2024 मूल्य: 350 रू.

डॉ. मोनू सिंह, छपरौली-बागपत-उत्तर प्रदेश

अपनी माटी अपनी कविता अभिमत पुस्तक का कवर पृष्ठ बहुत सुंदर है। शुभम् साहित्य कला एवं संस्कृति संस्थान का यह स्तुत्य प्रयास है। रचनात्मकता और शुभम एक दूसरे के पर्याय बन गए हैं। इस गुरुतर कार्य का श्रेय आपकी सच्ची निष्ठा,परिश्रम और बहुआयामी व्यक्तित्व को जाता है। बुलंदशहर के साहित्यकारों पर केंद्रित मेरे ख्याल से यह पहला साझा रचनात्मक उपक्रम है। तीन पीढ़ियों के छोटे बड़े 20 कवियों के लिए एक मंच उपलब्ध कराना महनीय कार्य है। अज्ञेय ने तार सप्तक के माध्यम से सात कवियों का संपादन,संकलन और नेतृत्व किया था। आपने और मुकेश निर्विकार जी ने बुलंदशहर जनपद के 20 कवियों की तीन पीढ़ियों को एक मंच उपलब्ध कराया है। मुझे इस संदर्भ में बरबस अज्ञेय द्वारा लिखित तार सप्तक की भूमिका की पंक्तियां याद आ रही है। ये किसी एक स्कूल के नहीं, किसी एक विचार धारा के नहीं ,,,,,,,, राहों के अन्वेषी है

इस संग्रह में संकलित सभी कवियों पर यह बात किसी न किसी रूप में परिलक्षित होती है। ये कवि भी किसी एक स्कूल या किसी एक विचारधारा के बाड़े में आबद्ध नहीं है अपितु राही हैं, राहों के अन्वेषी है। संग्रह का नाम बहुत उपयुक्त है जिसके विषय में आपने भूमिका में प्रकाश डाला है। इस शीर्षक में कविता और मिट्टी के बीच रिश्ते को सिरजने की व्यंजना विन्यस्त है। आपको और संग्रह में संकलित सभी कवियों को बहुत शुभकामनाएं और बधाइयां। साहित्यिक जगत में यह काव्य संग्रह अपनी पहचान बनाने में सफल हो। ऐसी कामना करता हूं।

***

मुकेश निर्विकार
बुलंदशहर—उत्तर प्रदेश, मो. 9411806433

सवाल सरोकारों के

पुस्तक समीक्षा

'सवाल सरोकारों के डॉ. ईश्वर सिंह के 36 लेखों का संग्रह है। यह पुस्तक ए.आर. पब्लिशिंग कंपनी, दिल्ली से प्रकाशित है। पुस्तक की प्रिंटिंग, क्वालिटी तथा साज-सज्जा अत्यंत प्रभावित करती है। नि:संदेह इस पुस्तक में समाहित लेख भी पाठकों को खासे प्रभावित करने वाले हैं।

लेखक ने यह पुस्तक उस शाश्वत सत्ता को समर्पित की है जिसने उसे 'अपने समय को तटस्थ ढंग से देखने की शक्ति दी है।' इस पुस्तक की विशेषता लेखक की निरपेक्ष दृष्टि है जिसे लेखों की तासीर रेखांकित करती है। पुस्तक की भूमिका श्री पंकज चतुर्वेदी, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली द्वारा लिखी गई है। भूमिका में चतुर्वेदी के शब्द इस पुस्तक का सटीक मूल्यांकन करते हैं, "सवाल सरोकारों का केनवास बेहद विशाल है। इसमें साहित्य भी है और समाज भी, न्यायपालिका भी है और पुलिस भी, पर्यावरण की चिंता है तो किसान व निर्वाचन में सुधार की भी। भाषा बेहद सहज है और पाठक को विचार करने पर मजबूर करती है कि क्या हम अपने निजी भौतिक सुखों की तलाश में अपने चारों तरफ बिखरी विद्रूपताओं पर मौन तो नहीं रह बैठे है?" इस संबंध में लेखक के आत्म-कथन के शब्द दृष्टव्य हैं, जो लेखक की अपने समय को लेकर निष्पक्षता और बेबाकी को बयाँ करने के साथ-साथ पुस्तक के महत्त्व एवं प्रयोजन को स्पष्ट करते हैं – "आज देशवासी, धर्म, जाति, क्षेत्रीयता और राजनीतिक दलों के समर्थन तथा विरोध में इस कदर विभक्त हैं कि वे निष्पक्ष और तटस्थ रूप में किसी विषय पर शायद ही विचार करते हों। एकपक्षीय दृष्टिकोण व्यक्ति की बौद्धिकता पर हावी हो गया है।" किंतु लेखक इससे सर्वथा हताश नहीं हैं, अपितु डंके की चोट पर कहते हैं, "इन सारी चुनौतियों के बीच भी सच्चाई और निष्पक्षता का महत्त्व अपनी जगह कायम है। 'सवाल सरोकारों के' पुस्तक इसी महत्त्व को रेखांकित करती है।"

पुस्तक में संकलित लेखों के विषय विभिन्न जन-सरोकारों से जुड़े हैं। ये सभी लेख एक तरह से लोक मानस या जन-मानस का चिंतन हैं। लेखक ने हिंदू-मुस्लिम एकता, कट्टरवाद और मुस्लिम नेतृत्व, नई शिक्षा नीति, शिक्षा में असमानता, किताबों से हटती युवा पीढ़ी, फिल्मी गीतों का गिरता स्तर, न्यायपालिका बनाम कार्यपालिका, एनकाउंटर, मतदाता का धर्म, पराली समस्या और समाधान, गौ-हत्या, किसान बनाम खालिस्तान, कोविड़ महामारी, इजराइल-फिलीस्तीन विवाद और भारतीय जनमानस, भाषाई उदारता के दुष्प्रभाव आदि मुद्दों पर बेबाकी से लिखा है। लेखक गाँधी जी के चिंतन से भी खासे प्रभावित दिखते हैं तभी इस पुस्तक में कई लेख गाँधी जी पर केंद्रित है, मसलन – 'प्रेमचंद साहित्य में गाँधीवाद', 'गाँधी जी : भ्रांतियाँ और तथ्य', 'गाँधी विरोध', 'गाँधी और मार्क्स', 'विश्व अहिंसा दिवस' और 'निंदनीय प्रतिद्वंद्विता' आदि। पुस्तक में कई लेख जीवन की सीख देने वाले एवं मानवीय मनोविज्ञान पर केंद्रित हैं। 'प्रशंसा की शक्ति', 'काल करे सो आज कर' और 'स्व-अभिप्रेरणा एवं स्व-अनुशासन' आदि लेख इसी श्रेणी में आते हैं। चूंकि ये सभी लेख सीधे-सीधे आमजन के सरोकारों से संप्रक्त हैं इसलिए लेखक ने अपनी भाषा अत्यंत सीधी-सरल-सपाट रखी है। उन्होंने अनावश्यक रूप से न तो अलंकृत भाषा का दुरूह प्रयोग किया है और न ही इन लेखों में विदेशी लेखकों के भारी भरकम उद्धृत अंश (Quotes) डालकर अनधिकार विद्वता का प्रदर्शन किया है। इसलिए ये लेख सभी वर्ग के पाठकों के लिए अत्यंत सुग्राह्य हैं।

हिंदू-मुस्लिम एकता पर लेखक का मत अत्यंत बेबाक है। वह देश की साम्प्रदायिक सद्भावना के ताने-बाने को बिगाड़ने के लिए दोनों ही संप्रदाय के लोगों को स्पष्ट आइना दिखाते हैं। लेकिन लेखक का उद्देश्य मात्र कमियाँ निकालना भर नहीं रहा है, अपितु उन्होंने समस्याओं के समाधान भी सौंपे हैं, जिनपर यदि चला जाये तो निश्चित ही सामाजिक समरसता पैदा होगी। इस संदर्भ में लेखक हिंदू-मुस्लिम सद्भाव की झलक प्रस्तुत करती घटनाओं का जिक्र करते हैं तथा उम्मीद रखते हैं कि 'ये खबरें बहुत हद तक आश्वस्त करती हैं कि सब कुछ इतना खराब नहीं है, जितना दिखाया जा रहा है।' वह अयोध्या मामले के दोनों पक्षकार, इकबात अंसारी और महंत धर्मदास को एक-दूसरे को गुलाल लगाकर होली खेलने, पाकिस्तान में बिलावल भुट्टो के हिंदुओं के साथ होली खेलने, पाकिस्तान की विधानसभा में हिंदुओं के विरोध में दिए बयान पर जमकर हंगामा और वॉक आउट होने तथा महाराज रणजीत सिंह के 180वें जन्म दिन पर लाहौर फोर्ट में उनकी प्रतिमा स्थापित किए जाने का जिक्र करते हुए कहते हैं ऐसी सकारात्मक पहल का समर्थन एवं प्रचार किया जाना चाहिए।

कुछ लेखों में लेखक का अति आदर्शवाद उनके चिंतन पर हावी दिखाई देता है। यह नि:संदेह स्वागत योग्य है लेकिन दो-एक जगह उनके मंतव्य व्यावहारिक पहलू की अनदेखी कर गए हैं। मसलन, 'एनकाउंटर' लेख में वह एक तरह से पुलिस विरोधी दलील देते हैं। उन्हीं के शब्दों में, "क्या यह असंभव है कि विकास दुबे के विकास दुबे बनने की अवधि में हिकरू गाँव के थाने जितने थाना प्रभारी रहे हैं, जितने सीओ रहे हैं, कानपुर में जिने एसपी/एसएसपी रहे हैं, उन सबको विकास दुबे के अपराधों के लिए जिम्मेदार ठहराया जाए और निश्चित किंतु लघु समय में उन्हें दंडित किया जाए?" लेखक की यह अपेक्षा मेरी नजर में सर्वथा अव्यावहारिक है। जब किसी दुर्दांत अपराधी के मारे जाने को समाज में कुछ लोग नहीं पचा पा रहे हैं तब उनके उभरने के दौरान वह पुलिस का क्या खास सहयोग करेंगे? फिर ऐसे दुर्दांत अपराधियों के खिलाफ इतने मुकद्दमे पंजीकृत करके और अदालत में उन मुकद्दमों की पैरवी करके (अपने जोखिम पर) पुलिस अपना कर्तव्य निर्वाह तो करती ही है, क्या उस समय समाज का यह दायित्व नहीं है कि वह आपराधिक प्रवृत्ति के व्यक्ति को अपना नायक / जनप्रतिनिधि न बनाकर पुलिस का सहयोग करे? इसी प्रकार 'गाँधी जी भ्रांतियाँ और तथ्य में लेखक ने गाँधी जी पर लगाए जाने वाले तमाम आरोपों का तर्कसंगत तरीके से खंडन किया है किंतु उनके ब्रह्चर्य के प्रयोगों को लेकर जो आरोप लगाए जाते हैं उन पर मात्र यह कहकर इतिश्री कर दी है कि 'ऐसे आरोपों पर टिप्पणी करना भी उनको नाहक अहमियत देने के बराबर है।' यहाँ सुधी पाठकों को लेखक से सहज ही यह अपेक्षा थी कि वह गाँधी जी पर लगाए गए उन आरोपों पर भी तर्कसंगत तरीके से प्रमाणिक तथ्य पाठकों के समक्ष रखकर गाँधी जी के आचरण की शुचित को सामने लायेंगे। उनका ऐसा करना गाँधी जी जैसे महामानव की वैश्विक स्वीकार्यता को निर्विवादित बनाने में पाठकों का मानस तैयार करता।

'सवाल सरोकारों के' एक अत्यंत विचारोत्तेजक पुस्तक है। पाठकों के सुप्त प्राय: मानस को लेखक के मंतव्य झंकृत करते हैं तथा उसे जागरूक बनाते हैं। पाठकों को जागरूक बनाना ही साहित्य का मूलभूत उद्देश्य भी होता है। इस पैमाने पर डॉ. ईश्वर सिंह की यह पुस्तक, नि:संदेह उनकी लेखनी का एक सफल प्रयास है। इन लेखों को पढ़कर आप अपने समय का साक्षात्कार करते हैं, उसे समझते हैं तथा अपने लिए कुछ परामर्श, कुछ प्रश्न, कुछ समाधान, तथा कुछ दायित्व-बोध सहेज कर ले जाते हैं। यही किसी पुस्तक की कामयाबी भी होती है जिस पर डॉ. ईश्वर सिंह की यह कृति खरी उतरती है।

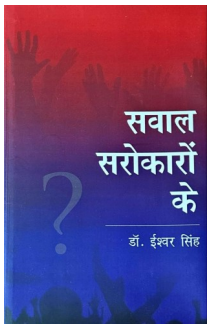

पुस्तक : सवाल सरोकारों के
लेखक: डॉ. ईश्वर सिंह
प्रकाशक: ए आर पब्लिशिंग कंपनी, अजीत विहार दिल्ली
ISBN: 978-93-94165-88-5
प्रकाशन वर्ष 2023 मूल्य: 395 रू.

साहित्यिक हलचल

राकेश चक्र को बाल कविता की पुस्तक "चलो चलें स्कूल" के लिए मिला पंडित ब्रजबहादुर पांडेय बालसाहित्य अखिल भारतीय पुरस्कार

बाल प्रहरी शोध संस्थान अल्मोड़ा उत्तराखंड द्वारा वर्ष 2024 के लिए आयोजित प्रतियोगिता में बाल कविता-संग्रह, "चलो चलें हम सब स्कूल" के लिए श्री राकेश चक्र पंडित ब्रजबहादुर पांडेय बाल साहित्य अखिल भारतीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह आयोजन मानिला अल्मोड़ा में आयोजित किया गया।

पुरस्कार ग्रहण करते हुए श्री राकेश चक्र

डॉ. देवकीनंदन शर्मा हुए 'हिंदी गौरव' सम्मान से सम्मानित

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के प्रतिष्ठित शिक्षा संस्थान, जे एस स्नातकोत्तर महाविद्यालय सिकन्द्राबाद (बुलन्दशहर) उत्तर प्रदेश ने वरिष्ठ शिक्षाविद् और साहित्यकार डॉ. देवकीनंदन शर्मा को हिन्दी के उत्थान में सुदीर्घ यशस्वी सेवा हेतु हिन्दी गौरव सम्मान से सम्मानित किया।

पुरस्कार ग्रहण करते हुए डॉ. देवकीनंदन शर्मा

***

विरासत

मुंशी प्रेमचंद की दृष्टि में साहित्य

मुंशी प्रेमचंद के शब्दों में 'साहित्य का उद्देश्य'

प्रेमचंद ने लखनऊ में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के अवसर पर अध्यक्ष के तौर पर 'साहित्य का उद्देश्य' नाम का एक भाषण दिया था। इस भाषण के प्रमुख अंश उद्धृत हैं:

- भाषा साधन है, साध्य नहीं। अब हमारी भाषा ने वह रूप प्राप्त कर लिया है कि हम भाषा से आगे बढ़कर भाव की ओर ध्यान दें और इस पर विचार करें कि जिस उद्देश्य से यह निर्माण कार्य आरम्भ किया गया था।

- सहित्य उसी रचना को कहेंगे, जिसमें कोई सचाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुन्दर हो, और जिसमें दिल और दिमाग़ पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप में उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सचाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गई हों।

- साहित्य की बहुत-सी परिभाषाएँ की गई हैं, पर मेरे विचार से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा 'जीवन की आलोचना' है। चाहे वह निबंध के रूप में हो, चाहे कहानियों के या काव्य के, उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए।

- शृंगारिक मनोभाव मानव-जीवन का एक अंग मात्र है और जिस साहित्य का अधिकांश इसी से सम्बन्ध रखता हो, वह उस जाति और उस युग के लिए गर्व करने की वस्तु नहीं हो सकता और न उसकी सुरूचि का ही प्रमाण हो सकता है।

- जब साहित्य पर संसार की नश्वरता का रंग चढ़ा हों और उसका एक-एक शब्द नैराश्य में डूबा, समय की प्रतिकूलता के रोने से भरा और शृंगारिक भावों का प्रतिबिम्ब बना हो तो समझ लीजिए कि जाति जड़ता और ह्रास के पंजे में फँस चुकी है और उसमें उद्योग तथा संघर्ष का बल बाक़ी नहीं रहा।

- अब साहित्य केवल मन-बहलाव की चीज नहीं है, मनोरंजन के सिवा उसका और भी कुछ उद्देश्य है। अब वह केवल नायक-नायिका के संयोग-वियोग की कहानी नहीं सुनाता, किन्तु जीवन की समस्याओं पर भी विचार

करता है और उन्हें हल करता है।

- साहित्यकार या कलाकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है। अगर यह उसका स्वभाव न होता, तो शायद वह साहित्यकार ही न होता। उसे अपने अन्दर भी एक कमी महसूस होती है और बाहर भी। इसी कमी को पूरा करने के लिए उसकी आत्मा बेचैन रहती है।
- हमारे लिए कविता के वे भाव निरर्थक हैं, जिनसे संसार की नश्वरता का आधिपत्य हमारे हृदय पर और दृढ़ हो जाय, जिनसे हमारे मासिक पत्रों के पृष्ठ भरे रहते हैं, हमारे लिए अर्थहीन हैं अगर वे हममें हरकत और गरमी नहीं पैदा करतीं।
- जिस आदर्श को हमने सभ्यता के आरम्भ से पाला है, जिसके लिए मनुष्य ने, ईश्वर जाने कितनी कुरबानियाँ की हैं, जिसकी परिणति के लिए धर्मो का आविर्भाव हुआ, मानव-समाज का इतिहास, जिस आदर्श की प्राप्ति का इतिहास है, उसे सर्वमान्य समझकर, एक अमिट सचाई समझकर, हमें उन्नति के मैदान में कदम रखना है।
- हमारी कला यौवन के प्रेम में पागल है और यह नहीं जानती कि जवानी छाती पर हाथ रखकर कविता पढ़ने, नायिका की निष्ठुरता का रोना रोने या उनके रूप-गर्व और चोंचलों पर सिर धुनने में नहीं है। जवानी नाम है आदर्शवाद का, हिम्मत का, कठिनाई से मिलने की इच्छा का, आत्मत्याग का।

***

'शुभोदय' ई-पत्रिका में रचना प्रस्तुत करने के लिए सामान्य नियम

भाषा एवं लिपि: 'शुभोदय' हिंदी भाषा की ई-पत्रिका है। अतः सभी रचनाएं हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि में उचित व्याकरण और वर्तनी के साथ लिखी जानी अपेक्षित हैं।

प्रकाशन अंक: शुभोदय के वर्ष में दो अंक 'वसंत अंक' और 'शरद अंक' प्रकाशित किए जाते हैं। अतः वसंत अंक के लिए 28 फरवरी तथा शरद अंक के लिए 31 अगस्त तक टंकित रचनाएं शुभोदय की ईमेल: shubhodayash-ubham@gmail.com पर प्राप्त हो जानी चाहिए।

विषय: रचना किसी भी विवादास्पद विषय पर या किसी समुदाय की भावनाओं को ठेस पहुँचाने वाली या राजनीतिक, धार्मिक, जातीय अथवा क्षेत्रीय विद्वेष पैदा करने वाली नहीं होनी चाहिए।

रचनाओं के प्रकार: शुभोदय के लिए लेख, कहानी, लघु कथा, संस्मरण, कविता, गीत, ग़ज़ल, पुस्तक-समीक्षा और साहित्य जगत की महत्वपूर्ण हलचल आदि से सम्बन्धित मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएं भेजी जा सकती हैं।

रचनाओं का आकार: 'शुभोदय' ई-पत्रिका के लिए कविता, गीत, गजल, लघु-कथा के लिए अधिकतम 300 शब्द तथा लेख, कहानी, संस्मरण के लिए 1000 शब्द सीमा निर्धारित है।

मौलिकता: शुभोदय में केवल मौलिक रचनाएं ही स्वीकार की जाती हैं। यदि किसी अन्य रचनाकार की कृति से कोई उद्धरण लिया गया है तो उसका उल्लेख कोष्ठक में या फुट नोट में किया जाना चाहिए।

नैतिक मानक: लेखन में नैतिक मानकों का पालन अनिवार्य है। अभद्र भाषा या असामाजिक सामग्री अस्वीकार्य है।

स्वरूपण: स्पष्ट शीर्षकों, उपशीर्षकों और अनुच्छेदों के साथ लेख को सही ढंग से प्रारूपित किया जाना चाहिए। रचना यूनिकोड़ में टंकित होनी चाहिएं। रचनाओं की वर्ड और पीडीएफ दोनों ही फाइल भेजी जानी चाहिए।

चित्र: यदि लेख में चित्र हैं, तो लेखक को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वे प्रासंगिक हैं, उच्च गुणवत्ता वाले हैं, और उन पर उपयुक्त शीर्षक हैं।

कॉपीराइट: लेखकों को अपने लेखों के कॉपीराइट 'शुभोदय' ई-पत्रिका में स्थानांतरित करने के लिए सहमत होना चाहिए, जो ई-पत्रिका को प्रिंट और डिजिटल सहित किसी भी प्रारूप में लेख प्रकाशित करने की अनुमति देता है।

प्रस्तुत करने की समय सीमा: रचनाकार 'शुभोदय' ई-पत्रिका द्वारा निर्धारित समय सीमा में अपनी रचनाएं प्रस्तुत करें। निर्धारित अवधि के बाद प्राप्त रचनाएं स्वीकार नहीं की जाएंगी।

संपादन: 'शुभोदय' ई-पत्रिका संपादक मंडल लेखक के मूल अर्थ और मंशा को बनाए रखते हुए स्पष्टता, लंबाई और शैली के लिए लेखों को संपादित करने का अधिकार सुरक्षित रखता है।

स्वीकृति: 'शुभोदय' ई-पत्रिका संपादक मंडल लेखकों को उनके लेखों की स्वीकृति या अस्वीकृति के बारे में सूचित करेगा। उचित संशोधन के बाद अस्वीकृत लेख पुनः जमा किए जा सकते हैं।

भुगतान: लेखकों को उनके द्वारा प्रस्तुत रचनाओं के लिए कोई मौद्रिक मानदेय नहीं दिया जा सकेगा।

आवश्यक जानकारी: रचना के साथ रचनाकार का नवीनतम फोटो (जेपीजी या जेपीईजी में), नाम, पता एवं मोबाइल नंबर होना चाहिए।

अस्वीकरण: किसी रचना में व्यक्त विचार और उनकी मौलिकता का पूरा दायित्व रचनाकार का होगा। पत्रिका में प्रकाशित होने पर भी उसकी जबाबदेही रचनाकार की होगी, संपादक मंडल की नहीं। प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों को शुभोदय के विचार नहीं माना जाएगा।

***

शुभोदय

शुभोदय